विषय सूची



उपोद्घात

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

ओ३म्

प्रथम संस्करण की भूमिका

—:०:—

दस वर्ष से अधिक समय [illegible] जब इस पुस्तक के [illegible] [illegible] एकत्रित की गई थी, और उसी समय चार अध्याय भी लिखे गये थे। परन्तु विशेषत. अवकाशाभाव से पुस्तक अपूर्ण पड़ी रही [illegible] वर्ष हुए जब कतिपय मित्रों के अनुरोध से मैंने [illegible] [illegible] किए, और तब यह गुरुकुल कांगड़ी के 'वैदिक मैगज़ीन' में [illegible] [illegible]। अब यह वर्तमान आकार में प्रकाशित की जाती है। मेरी [illegible] थी कि मैं पहले चार अध्यायों को नये सिरे से लिखूं। [illegible] [illegible] न मिलने के कारण, यह सम्भव न हो सका और [illegible] [illegible] पुनर्विचार कर सका।

यह पुस्तक मौलिक होने की प्रतिष्ठा नहीं रखती। इसमें [illegible] बात होगी जिसे मैं अपनी कह सकूं। यह पुस्तक [illegible], [illegible],

कुरान तथा अन्य विविध मत सम्बन्धी अनेक पुस्तकों के उद्धरणों से भरी हुई है। प्रतिपाद्य विपय और अन्वेपणाशैली के विचार से अवतरणों का उद्धृत करना अनिवार्य था। दो मतों के बीच विचार-साम्य दिखाकर उनके मध्य सम्बन्ध स्थापित करने को समानता के जितने उदाहरण उपलब्ध हो सके उतनों का देना आवश्यक है। वास्तव में समानताओं की संख्या जितनी अधिक होगी तर्क उतना ही दृढ़ और विश्वास-प्रद होगा। इस पुस्तक मे अन्य ग्रन्थकारों के ग्रंथों से भी अनेक उद्धरण दिये गये हैं इसका कारण यही है कि कुछ विपयों पर मेरी निज की सम्मति अप्रमाणिक प्रत्युत प्रगल्भतायुक्त प्रतीत होती। यह कारण न होता तो मैं पाठकों पर इतने अधिक अवतरण और उद्धरणों का भार कदापि न डालता। संसार के विभिन्न मतों की परस्पर तुलना करने मे मैंने स्वतन्त्रतापूर्वक उन पुस्तकों से लाभ उठाया है जिनका मुझे ज्ञान था। मुसलमानी मत का यहूदी मत से मिलान करने में मैंने अधिकांश मे डाक्टर सेल का अनुगमन किया है, और प्रथम अध्याय के प्रायः प्रत्येक पृष्ठ के लिये मै उनका आभारी हूँ। बौद्ध मत का ईसाई मत पर प्रभाव दिखाने मे श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त के 'प्राचीन भारतीय सभ्यता' (Civilization in Ancient India) नामक ग्रन्थ से अधिक सहायता ली है। परन्तु यहूदी मत जरदुश्ती मत से और उसका वैदिकधर्म से मिलान करने में मैं किसी पुस्तक विशेप पर अवलम्बित नहीं रहा हूँ।

अन्तिम अध्याय मे जरदुश्ती मत और वैदिक-धर्म की तुलना करते हुये अनेक विपयो पर जिनकी ओर मेरा ध्यान आकर्पित हुआ, वैदिक-शिक्षा का कुछ विस्तारपूर्वक वर्णन करने का अवसर प्राप्त किया है, जिसके कारण वह अध्याय औरों की अपेक्षा कुछ बढ़ गया है।

जैसा कि पाठकों को ज्ञात हो जायगा, इस ग्रन्थ का उद्देश्य किसी विशेप मत या मतों पर तीव्र आलोचना अथवा कटाक्ष करना नहीं

है किन्तु सब मतों का मूल वेदों को सिद्ध करके उनके परस्पर सम्बन्ध प्रकट करना है।

अन्त में प्रार्थना है कि यदि पुस्तक में कोई अशुद्धि या त्रुटि रह गई हो तो उसके लिये पाठकगण कृपया क्षमा करेंगे।

गंगाप्रसाद

अनुवाद की भूमिका

यह पुस्तक प्रथम अङ्गरेजी भाषा में सन १९०९ में छपा था। सन १९११ में दूसरा और सन १९१६ में तीसरा संस्करण छपा था। पुस्तक का सर्वसाधारण ने जैसा मान किया उससे मैं [illegible] हूँ। भारतवर्ष के अतिरिक्त योरप, अमरीका और अफ्रीका में भी [illegible] गई। कतिपय प्रसिद्ध विद्वानों के प्रशंसापत्र तथा समाचारपत्रों की समालोचनाएं पुस्तक के अन्त में दी गई हैं।

मेरे एक मित्र मौलवी [illegible] मुहम्मद [illegible] ने पुस्तक के कुछ भागों की आलोचना करते हुए '[illegible]' नामक पत्र में कतिपय लेख छपवाये थे, जिनका उत्तर मैंने '[illegible]' में दिया था। अङ्गरेजी के तीसरे संस्करण में वे सब उत्तर भी पुस्तक के अन्त में छाप दिये गये हैं और "[illegible]" नामक पत्र [illegible] की आलोचना के भी उत्तर दिये गये हैं। इन सब को इस अनुवाद में छपवाना उचित नहीं समझा गया क्योंकि मूल लेख भी [illegible] हैं केवल अङ्गरेजी में ही छपे हैं, और उनका अनुवाद छापने से पुस्तक बहुत बढ़ जाता।

मेरे परम मित्र बाबू [illegible]राम जी एम० ए०, [illegible] ने मूल पुस्तक का उर्दू में अनुवाद किया जो मौलवी [illegible]

की ओर से छप चुका है। आर्यभाषा (हिन्दी) में अनुवाद करने के लिये आरम्भ से ही कई विद्वानों ने इच्छा प्रकट की थी किन्तु मेरे एक योग्य मित्र का विचार स्वयम् हिन्दी-अनुवाद करने का था, उनके अनुरोध से किसी को आज्ञा नहीं दी गई। परन्तु कुछ कारणों से उक्त मित्र अपना विचार पूर्ण न कर सके। अब श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा ने आर्य्यमित्र आगरा के योग्य सम्पादक पं० हरिशंकर शर्मा से पुस्तक का अनुवाद कराया है जो पाठकों की भेंट होता है। मैंने इसको आदि से अन्त तक देख कर मूल के अनुकूल शुद्ध कर दिया है तथापि जो भूल वा त्रुटि रह गई हो, आशा है कि पाठकगण उनके लिये क्षमा प्रदान करेंगे।

आगरा
१७। ११। १७ } गंगाप्रसाद

अनुवाद के तृतीय संस्करण की भूमिका

हिन्दी का पहला संस्करण अङ्गरेजी पुस्तक के तीसरे संस्करण का अनुवाद था। अङ्गरेजी के चतुर्थ संस्करण में कुछ विषय बढ़ाया गया था। हिन्दी के दूसरे संस्करण में उसके अनुकूल संशोधन कर दिया गया था।

(२) इस तीसरे संस्करण मे युद्ध के कारण कागज मिलने की अत्यन्त कठिनाई होने से पुस्तक के आकार मे कुछ थोड़ी कमी की गई है।

अङ्गरेज़ी के दूसरे संस्करण की भूमिका का अनुवाद छोड़ दिया गया है। चतुर्थ अध्याय के पहिले व दूसरे अंशो में कुछ ऐसी बातें कम कर दी गई हैं जो बहुधा हिन्दी पाठकों के लिये अनावश्यक प्रतीत हुई। आशा है इससे पुस्तक की उपयोगिता में कोई कमी नहीं होगी।

५. ६. १९४४ गङ्गाप्रसाद

ओ३म्

धर्म का आदि स्रोत

उपोद्घात



धर्म का मूल ईश्वर है।

धर्म का उत्पत्ति-स्थान क्या है ? किसी मत विशेष का नहीं प्रत्युत उस धर्म का मूल क्या है जिसके रूपान्तर रूप से विविध प्रकार के मत विद्यमान हैं। साधारणतया इस प्रश्न के दो उत्तर हैं :—(१) यह कि धर्म का मूल ईश्वर है और (२) यह कि उसकी उत्पत्ति मनुष्य से है। प्रथम विचार इस बात की उपेक्षा नहीं करता कि वर्तमान धर्मों के विकास और वृद्धि पर, मनुष्यों का उनके जातीय इतिहास और देश की भौगोलिक अवस्था तक का बड़ा प्रभाव पड़ा है। केवल इस बात पर बल दिया जाता है कि धर्म का आदि मूल सच्चा ईश्वर है।

यह पुस्तक इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर पूर्णरूपेण मीमांसा करने की प्रतिज्ञा नहीं करती। इसका उद्देश्य संसार के मुख्य २ मतों के मिलान और अनुशीलन से केवल यह सिद्ध करना है कि नवीन मतों का पता पुराने मतों से और इन पुराने मतों का पता और अधिक प्राचीन मतों से चल सकता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर पता लगाते हुए हम मनुष्य-जाति के प्राचीनतम पवित्र धर्म तक पहुँच जाते हैं। मतों के परस्पर मिलान पूर्वक अनुशीलन से यह सिद्ध हो जाता है कि [illegible] की सीमा के अन्तर्गत किसी प्रकार का नया आविष्कार नहीं हुआ। धर्म के मुख्य सिद्धान्त जिनमें उसका सार पाया जाता है उतने ही पुराने हैं जितनी कि मानव जाति। इससे सिद्ध होता है कि सृष्टि के प्रारम्भ-काल में परमेश्वर ने धार्मिक ज्ञान का बीज मनुष्य के लिये दिया था

और यही धर्म-ज्ञान का बीज मानव जाति के ग्रन्थ भण्डार की सर्व सम्मत प्राचीनतम पुस्तक वेद में पाया जाता है।

कोई आस्तिक इस बात को स्वीकार करने में संकोच न करेगा कि एक अर्थ में ईश्वर सम्पूर्णज्ञान का मूल कारण है। परन्तु धार्मिकज्ञान के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से सत्य है। पश्चिमीय तत्वज्ञान के प्रथम आचार्य देकार्त्त (Descartes) साहब ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान के विषय में लिखते हैं कि जितना ही अधिक मैं सोचता हूं उतना ही मेरा यह विश्वास है कि यह विचार मेरे मन से उत्पन्न नहीं हुआ, अधिकतर गम्भीर हो जाता है। परमेश्वर अनन्त है और मेरी आत्मा सान्त है। परमेश्वर स्वतन्त्र है और मेरी आत्मा परतन्त्र है, इत्यादि। अतएव यह स्पष्ट है कि मैं इस ज्ञान का उत्पादक नहीं हो सकता। इसमें सन्देह नहीं कि इस ज्ञान की छाप स्वयं परमेश्वर ने मनुष्य के आत्मा पर लगाई है। इन विचारों में बहुत कुछ सत्य है जो इस बात से प्रकट है कि हमारा ईश्वर तथा उसके स्वभाव और गुण विषयक ज्ञान अन्य प्रकार के ज्ञानों के सदृश नहीं हैं। उसमे और ज्ञानों के समान परिवर्त्तन वा उन्नति नहीं हो सकती। हमें इस बात का ज्ञान है कि ईश्वर न्यायकारी, श्रेष्ठ, दयालु, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अनन्त और सर्वव्यापक है, इत्यादि। परन्तु ऐसा कोई समय न था जब इन गुणों में से किसी एक का भी ज्ञान मनुष्य को न रहा हो। प्राचीन ऋषिगण ईश्वर की उपासना उसे इन गुणों से युक्त जानकर करते थे। अर्वाचीन विज्ञानवेत्ता या धर्मोपदेष्टा इससे अधिक और किन गुणों के ज्ञान का अभिमान कर सकते हैं? अन्य विषयों में हमारा ज्ञान उत्तरोत्तर वृद्धि करता चला जाता है परन्तु ईश्वर विषयक हमारी अभिज्ञता एक ही स्थान पर स्थिर है। अतएव यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि कालचक्र कितना ही क्यों न चले—पदार्थ-विज्ञान अब से भी अधिक शीघ्रता के साथ उन्नति पथ पर चाहे जितना चौकड़ी भरे—भौतिक पदार्थों के विषय में हम कितने ही आश्चर्यपूर्ण नूतन आविष्कार करलें परन्तु वह समय आना सम्भव नहीं जब मनुष्य ईश्वर के

सम्बन्ध में कोई नवीन बात जानने के योग्य होगा। यह सम्भव है कि हम लोग ईश्वरीय गुणों के सम्बन्ध में अब से अधिक उत्तम ज्ञान प्राप्त करलें अथवा उनको पूर्णतया अनुभव करने में समर्थ हों परन्तु परमेश्वर का कोई नवीन गुण खोजने या जानने के योग्य हम कदापि नहीं हो सकते। कारण यह है कि ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान मनुष्यों के मस्तिष्क में उत्पन्न नहीं हुआ।

जैसा ईश्वर के ज्ञान विषयक यहां लिखा गया है वैसा ही समस्त धर्म ज्ञान के विषय में समझना चाहिए। धर्म-ज्ञान की सीमा में न तो कभी कोई वास्तविक नवीन अन्वेषणा की गई और न की जा सकेगी। मैडम एच० पी० ब्लैवस्टकी का यह विचार यथार्थ है—

"अनेक बड़े विद्वानों का कथन है कि आर्य, सामी, या तूरानियों में ऐसे किसी धर्म-संस्थापक का प्रादुर्भाव नहीं हुआ जिसने किसी नवीन धर्म तत्त्व को निकाला हो अथवा कोई नूतन ज्ञान प्रकाशित किया हो। इन समस्त आचार्यों ने धर्म-ज्ञान को पारम्परा से लेकर उसका प्रचार किया है। वे कोई आदिगुरु नहीं थे। इसी लिये डाक्टर लेग * कनफ्यूशस को 'धर्मनिर्माता' न कह कर धर्म प्रचारक बताते हुए उनके वचन [illegible] कहते हैं कि "मैं केवल प्रचार करता हूं कोई नवीन बात उत्पन्न नहीं कर सकता, प्राचीन पुरुषों पर मेरा विश्वास है इसलिये मैं उन्हें प्रेम करता हूं।" (प्रो० मोक्समूलर के 'साइन्स आफ रिलीजन' से उद्धृत) ‡

प्रोफ़ेसर मोक्समूलर का कथन है कि "सृष्टि-उत्पत्ति से [illegible] काल से कोई भी ऐसा धर्म नहीं हुआ जो सर्वथा नूतन हो"। †

इन विचारों से हम यही स्थिर करते हैं कि इस संसार में [illegible]

---

* चीन देश का एक बड़ा प्रसिद्ध तथा प्राचीन धर्म-शिक्षक कनफ्यूशस (Confucious) था।

‡ देखो Secret Doctrine Vol. I p. XXXVII

† देखो Chips from a German Workshop Vol. I, Preface, p. X

ज्ञान के उत्पत्ति-स्थान का पता लगाने के लिये हमको ईश्वर की ओर जाना पड़ता है अथवा दूसरे शब्दों मे यह कहा जा सकता है कि अन्ततोगत्वा धर्म की उत्पत्ति ईश्वर से है।

यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या धर्मों के समस्त भेद समान-रूप से ईश्वरीय हैं? क्या संसार भर के परस्पर विरोधी समस्त मत समान रूप से सत्य हैं? इसके उत्तर मे हम 'हां' और 'ना' दोनों का उपयोग करते हैं। वर्त्तमान समय मे जितने मत मतान्तर हैं उनमें ईश्वरीय ज्ञान और मानवी भूल दोनों का मिलाव पाया जाता है। किन्तु विचार पूर्वक तुलना करने से प्रकट हो जायगा कि उनमे जो सार है उसका मूलवेद है। उनमे बहुत ‡ सी बातों में भेद है तो भी ऐसे सिद्धान्त और सत्य हैं जो उन सब में अथवा बहुतों मे समान हैं। ये समान सत्य बातें और सिद्धान्त वेदों से निकले हैं और बहुधा वे बातें भी जिन पर इन मतों में इतना अधिक भेद प्रतीत होता है, वास्तव मे एक ही प्रकार की पाई जावेंगी। जो बाह्य भेद दिखाई देता है उसका कारण यह है कि जिस वैदिक उपदेश के ऊपर उनकी नींव है उसके समझने में भेद भ्रम वा भूल हुई है।

अब हम यह सिद्ध करने के लिये आगे बढ़ते हैं कि वेद ही समस्त धर्मों का मूल कारण है। यही वह स्रोत है जिससे धार्मिकज्ञान की धारा जरदुश्ती, यहूदी, बौद्ध, ईसाई और मुसलमानी मतों की नदियों मे होकर बही है। हम उपर्युक्त पाँच प्रधान धर्मों पर ही विचार करेंगे संसार के अन्य मत साधारणतः उन्हीं मे से किसी एक या दो पर

‡ इसी प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ३८२ पर लिखते हैं :—

"जिस बात में यह सहस्र एक मत हैं वह वेद मत ग्राह्य है और जिसमें परस्पर विरोध हो वह कल्पित, झूठा, अधर्म, अग्राह्य है।"

अवलम्बित हैं। जैनमत बौद्ध धर्म का रूपान्तर मात्र है। कबीर, नानक और दादूपन्थ अधिकांश में हिन्दू-धर्म और किसी अंश में मुसलमानी मत पर स्थित हैं। ब्राह्म-धर्म की उत्पत्ति हिन्दू धर्म और ईसाई-मत से है। इसी प्रकार अन्य छोटे छोटे मतों के सम्बन्ध में समझना चाहिए।

इन विविध मतों की उत्पत्ति कैसे हुई? धर्मों के इतिहास और अनुशीलन से ज्ञात होता है कि जब कभी पुरोहितों के स्वार्थ अथवा सर्वसाधारण के अज्ञान वश धर्म के किसी महत्व पूर्ण अङ्ग का ह्रास अथवा लोप हो जाता है तब कोई महान् आत्मा प्रकट होकर उस अङ्ग का पुनः प्रचार करता है, जिससे कारण धर्म का मैल दूर होकर वह अपनी पूर्ण दीप्ति के साथ चमकता है।

इस प्रकार प्रत्येक नवीन धर्म आरम्भ में किसी प्राचीन धर्म की तत्कालीन दशा का संशोधन करने को और उसके [illegible] का विरोध करने को उत्पन्न हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि जब वैदिक ईश्वरवाद में अनेक देवताओं की पूजा का जोर हो गया था, तब समय [illegible] का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने [illegible] ईश्वर की उपासना का उपदेश दिया, और अनेक देवताओं की पूजा का खण्डन किया। इसी प्रकार [illegible]

[illegible]

निरपराध पशुओं का अन्धाधुन्ध संहार होता था, जब मनुष्य मात्र की धार्मिक समानता के स्थान में अन्याययुक्त जातिभेद फैल गया था, उस समय गौतमबुद्ध का आविर्भाव हुआ जिन्हों ने पवित्र जीवन का उपदेश किया, तथा पददलित शूद्र और वाक्हीन पशुओं की ओर से हृदयग्राही अपील की। जिस प्रकार बुद्ध ने अपने समय के वैदिकधर्म का सुधार करने का उद्योग किया उसी प्रकार ईसामसीह, यहूदीमत का पुनः संस्कार करने को यत्नवान् हुए। जब ईसाईमत पतित होकर मिथ्या विश्वास और मूर्ति पूजा के ढकोसलों में फँस गया उस समय मुहम्मद साहब अपने प्रबल एक-ईश्वरवाद के प्रचारार्थ आये। यही बात अन्य धर्म प्रवर्त्तकों के सम्बन्ध मे कही जा सकती है। उदाहरणार्थ हमारे देश में ही कबीर, नानक दादू और चैतन्य संशोधक हुए, जिनका उद्देश्य अपने समय के अवनत हिन्दू धर्म को मिथ्या विश्वास, मूर्तिपूजा और अनेक देव वा बहु ईश्वरवाद के दोषों से शुद्ध करना था। इस प्रकार ये समस्त धर्माचार्य (चाहे उन्हें पैग़म्बर कहिये) वास्तव में संशोधक थे। इन सभी ने अपनी अपनी शैली से भलाई करने और उस समय के वर्त्तमान धर्मों को उन्नत बनाने का प्रयत्न किया। किन्तु उनमें से कोई भी सनातन वैदिकधर्म की श्रेष्ठतम पवित्रता की समानता नहीं कर सका।

——:०:——

छः मुख्य धर्मों का समय-निरूपण ।

मुसलमानी, ईसाई, बौद्ध, यहूदी, जरदुश्ती

और

वैदिकधर्म ।

पाठकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त धर्म [illegible] क्रम से लिखे गये हैं । उदाहरणार्थ बौद्धधर्म ईसाईमत से और ईसाईमत मुसलमानीमत से पुराना है, इसे हर कोई जानता है । इसी प्रकार यह भी निश्चित है कि वैदिकधर्म, जरदुश्तीमत से पुराना है और जरदुश्ती-मत यहूदीमत से पूर्व का है । पर यह बात उतनी सुपरिचित नहीं है, अतएव यहां इन तीनों धर्मों की पारस्परिक प्राचीनता [illegible] एक शब्द कहना अनुचित न होगा ।

बाइबिल के अनुसार हजरत मूसा [illegible] व्यवस्थापक बताये जाते हैं, सन् ईसवी से १५७१ वर्ष पूर्व [illegible] थे, और ईसा से १४९१ वर्ष पूर्व उन्हें ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ । इस प्रकार यहूदियों की प्राचीनतम पुस्तक सन् ईसवी से १४९१ वर्ष पूर्व से अधिक पुरानी होने का दावा नहीं कर सकती । और यदि हम [illegible] लेखक हजरत मूसा को न मानें तो [illegible] एज़रा ने इसका संकलन सन् ईसवी से केवल ४५[illegible] वर्ष पूर्व किया (देखो अध्याय ४ नंबर २) ।

* बाइबिल के [illegible] है । [illegible] और ईसाई दोनों [illegible] है ।

पंजनामे की अपेक्षा ज़न्दावस्ता † अधिक पुराना ग्रन्थ है। डा० स्पीगल के अनुसार जरदुश्त, अब्राहम के समकालीन थे, जो सन् ईसवी से १६०० वर्ष पूर्व हुए। इस प्रकार उनका काल मूसा से ४०० वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। डा० हॉग (Dr Hang) कहते हैं कि प्रथम शताब्दी का सिनी नामक सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता इससे बढ़कर जरदुश्त का समय मूसा से कई सहस्र वर्ष पूर्व बताता है। (देखो Historia Naturalis XXX, 2) आगे चलकर हॉग साहब कहते हैं कि बैबीलोन का प्रसिद्ध इतिहासज्ञ बीरोसस उसे बैबीलोन के लोगों का सम्राट् और उनके परिवार का परिवर्त्तक ठहरता है, जिन्होंने कि सन् ईसवी से पूर्व २२०० और २००० वर्ष के मध्य राज्य किया। पारसियों के पवित्र ग्रन्थों का वर्णन करते हुए डा० हॉग एक स्थान पर लिखते हैं:—"मूसा के समय (ईसा से १५६० वर्ष पूर्व) से लेकर तलमूदी साहित्य के अन्त (सन् ६६० ई०) तक यहूदियों के पवित्र ग्रन्थों की रचना में कोई २४०० वर्ष व्यतीत हुए। जरदुश्ती साहित्य के सम्बन्ध मे भी यदि हम इसी प्रकार की गणना करें तो उसका आरम्भ काल ईसा से २८०० वर्ष पूर्व मानना पड़ेगा। और यह बात उन वचनों का किसी अंश में भी विरोध न करेगी जो यूनानियों ने पारसी धर्म के प्रवर्त्तक का समय वर्णन करने में लिखे हैं"। देखो (Hang's Essays पृष्ठ १३६) .

प्राचीन यूनानी ग्रन्थकारों की सम्मति भी इस प्रकार की है। "अरस्तू और यूडोक्सस, ज़रदुश्त का समय प्लेटो (अफ़लातून) से ६००० वर्ष पूर्व मानते हैं। दूसरे लोग Trojan war ट्रोजन युद्ध से ५००० वर्ष पूर्व बताते हैं।" (देखो सिनी साहब की Historia Naturalis XXX; 1-3)

---

† पारसियों की धर्मपुस्तक का नाम ज़न्दावस्ता है जिसका ज्ञान ईश्वर की ओर से ज़रदुश्त पर होना माना जाता है। इसको केवल अवस्ता नाम से भी पुकारते हैं।

पारसी लोग स्वयं अपने ग्रन्थों की बहुत बड़ी प्राचीनता मानते हैं और यह बात तो ईसाइयों को भी माननी पड़ेगी कि वे [illegible] की अपेक्षा अधिक पुराने हैं।

कोई ही ऐसा होगा जो इस बात को न माने कि वेद [illegible] और संसार की अन्य समस्त पुस्तकों से अधिक पुराने हैं। हमारे ऋषियों का विश्वास है कि वेदों का प्रकाश सृष्टि के आदि में हुआ। इस सम्मति पर कुछ ही क्यों न कहा जाय परन्तु इतना सुनिश्चित है कि मानवजाति के पुस्तकालय में वेदों से प्राचीनतर कोई पुस्तक नहीं। प्रोफेसर मोक्षमूलर स्वीकार करते हैं कि "ऐसा कोई पुस्तक [illegible] नहीं जो हमें मानवीय इतिहास में वेदों से प्राचीनतर समय [illegible] पहुंचावे"।* जिन्दावस्ता के विद्वान अनुवादक पादरी [illegible] मिलज भी जिन्दावस्ता की अपेक्षा वेदों का काल पुराना [illegible] हुए लिखते हैं—"सिंधु और [illegible] जिनका वर्णन [illegible] 'अवस्ता' [illegible] की [illegible] (जो जिन्दावस्ता [illegible]) [illegible] "हम को इस परिवर्तन [illegible] और [illegible] से [illegible]।"‡

इस पुस्तक [illegible] इन पांचों [illegible]

---

* Chips from a German Workshop [illegible]

† जिन्दावस्ता [illegible] भाग [illegible] (S. B. E. Series)

‡ वही [illegible] १०--

धर्म का आदि स्रोत

प्रथम अध्याय

मुसलमानी मत का आधार विशेषतः यहूदी मत है।

मुहम्मदीमत अधिकांश में यहूदीमत और कुछ अंश में जरदुश्तीमत के आधार पर है, जिस पर कि स्वयं यहूदीमत अवलम्बित है। पहिली बात को तो मुसलमान भी अस्वीकार नहीं करते हैं जिनका कथन ही यह है कि उनके धर्माचार्य ने कुछेक बातों में यहूदीमत का संशोधन किया है। इन दोनों मतों को विस्तार पूर्वक मिलाने से यह बात प्रकट होगी कि अवान्तर बातों में भी मुहम्मद साहब ने यहूदियों का किस घनिष्ठता के साथ अनुकरण किया है और यह भी सिद्ध हो जायगा कि मुसलमानीमत में ऐसी बहुत कम क्या कोई भी महत्वपूर्ण बात नहीं जिसके लिये मुहम्मद साहब नवीन अथवा ईश्वरीय ज्ञान होने की प्रतिज्ञा कर सकें।

अपनी अन्वेषणा के इस भाग में हम डाक्टर सेल का अनुगमन करेंगे। उनके सुप्रसिद्ध-कुरान के अनुवाद में जो भूमिका है उसमें इस विषय-सम्बन्धी बातों का भण्डार भरा हुआ है।

१—सृष्ट्युत्पत्ति।

यह संसार पहिली ही बार रचा गया और प्रलय के पीछे दोबारा नहीं रचा जायगा, यह केवल यहूदी विचार है और वह मूसाई तथा अन्य दो बड़े मत अर्थात् ईसाई व मुसलमानी मतों का—जिनकी भित्ति

उसके आधार पर है-विशेष उपलक्षण है। और यह विचार भी कि-यह सृष्टि सर्वशक्तिमान् परमात्मा की आज्ञा से अभाव से उत्पन्न हुई—यहूदियों से लिया गया है। आदम और हव्वा की उत्पत्ति, उनका अदन के उस बाग़ में रक्खा जाना जहाँ एक वृक्ष के फलों को छोड़ कर वे समस्त वस्तुओं का भोग कर सकते थे, सर्प के रूप में शैतान का आना और ठीक उसी फल को खाने का प्रलोभन देना, इस पर स्वर्ग से उनका निकाला जाना, यह कथा ज्यों-की-त्यों यहूदी पन्थ से ली गई है।

यही बात मनुष्यों से ऊँचे उन प्राणियों के सम्बन्ध में कही जा सकती है कि जो फरिश्ते कहलाते हैं, जिनके शरीर पवित्र और सूक्ष्म, और अग्नि से बने हुए हैं। और जो न खाते न पीते और न सन्तानोत्पत्ति करते हैं। इन फ़रिश्तों के रूप और कार्य विविध प्रकार के हैं, उनमें सब से बड़े चार जबराईल, मीकाईल, इज़राईल और [illegible] हैं। डाक्टर सेल लिखते हैं—"फरिश्तों के सम्बन्ध की समस्त बातें मुहम्मद साहब ने यहूदियों से लीं। यहूदियों ने फ़रिश्तों के नाम और कार्य की शिक्षा पारसियों से ग्रहण की जैसा कि वे स्वयं स्वीकार करते हैं।" (Talmud Hieras and Rashbashan)*

कुरान ने 'जिन' नामक तीन जाति के होने की शिक्षा भी दी है। ये भी अग्नि से बने हैं परन्तु फ़रिश्तों की अपेक्षा इनके शरीर स्थूल बनावट के हैं, क्योंकि ये खाते, पीते, सन्तानोत्पत्ति करते और मृत्यु के ग्रास बनते हैं। डाक्टर सेल का कथन है कि "ये विचार यहूदियों के उन विचारों से प्रायः सर्वथा मिलते हैं जो उन्होंने [illegible] प्रकार की प्रेत जाति के सम्बन्ध में लिखे हैं।"

२—संसार का प्रलय और पुनरुत्थान।

मुसलमान लोग आत्मा को अमर मानते हैं। उनका विश्वास है कि

---

* [illegible]

[illegible] ४ [illegible] १ भी देखो।

५८ ५८। दिन आवेगा जब मृतक लोग अपने जीवन में किये हुए शुभाशुभ कर्मों के अनुसार फल वा दण्ड पाने के लिये उठेंगे । यह सब-की-सब शिक्षा यहूदियों से ली गई।

मृतोत्थान—कुछ लेखकों के मतानुसार मृतोत्थान केवल आत्मिक होगा। पर साधारणतः माना हुआ सिद्धान्त यह है कि शरीर और आत्मा दोनों उठाये जावेंगे * । यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि शरीर गल-सड़ गया वह कैसे उठेगा ? परन्तु मुहम्मद साहब ने सावधानी पूर्वक शरीर के एक भाग को इसलिये सुरक्षित रक्खा है कि जिस से वह भावी शरीर-रचना के लिये आधार का काम दे सके, अथवा उस मवाद के लिये खमीर का काम दे सके जो इसमें मिलाया जायगा। क्योंकि उनका यह उपदेश है कि एक हड्डी को छोड कर जिसे वे अल अजब और हम मेरुदंड (Coseygis) कहते हैं। मनुष्य का शेष सब शरीर पृथ्वी में मिल जायगा। मनुष्य के शरीर में सब से पूर्व उसकी रचना होने के कारण अन्तिम दिवस तक भी वह बीज रूप हो कर अक्षय रहेगी। जिसके द्वारा फिर नवीन रूप से सारा शरीर बनाया जायगा, और जैसा उनका कथन है यह कार्य ईश्वर की भेजी हुई ४० दिन की वर्षा से किया जायगा। यह वर्षा पृथ्वी को १२ हाथ ऊँचाई तक पानी से ढक देगी और शरीरों को पौधों के समान उगायेगी। यहाँ भी मुहम्मद साहब यहूदियों के कृतज्ञ हैं क्योंकि वह भी लूज नामक अस्थि के सम्बन्ध में यही बात कहते हैं। भेद केवल इतना ही है कि मुसलमान लोग जिस कार्य का बड़ी वर्षा-द्वारा होना मानते हैं, यहूदी लोग उस को एक ओस-द्वारा मानते हैं कि जो पृथ्वी की मिट्टी को उपजाऊ बना देगी †

मृतोत्थान के चिन्ह—मृतोत्थान दिवस की समीपता कुछ लक्षणों से जानी जायगी जो उससे पूर्व दिखाई देंगे।

(अ) सूर्य का पश्चिम में उदय होना।

---

* सेल साहब का कुरान, भू० पृ० ६१।

† सेल साहब का कुरान भूमिका, पृ० ६१।

(ब) दज्जाल नामक पशु का प्रकट होना। इसकी अत्यन्त अद्भुत आकृति होगी और वह इसलाम की सचाई का अरबी भाषा-द्वारा उपदेश करेगा। डाक्टर सेल की सम्मति में यह विचार उस पशु से लिया जाना प्रतीत होता है जिसका उल्लेख बाइबिल में किया गया है। (देखो लूक, अ० २३।८)

(स) महदी का आगमन।

(द) सूर नामक नरसिंहा का तीन बार फूंका जाना।

ये सब विचार न्यूनाधिक यहूदियों से लिये गये हैं। ऐसा ही यह सिद्धान्त भी है कि मृतोत्थान के पश्चात किन्तु न्याय-व्यवस्था से पूर्व पुनर्जीवित आत्माओं को चिरकाल तक सूर्य की कड़ी धूप में खड़ा होकर प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। सूर्य इतना नीचा उतर आवेगा कि उसकी ऊंचाई उनके सिरों से केवल कुछेक हाथ रह जायगी। +

न्याय का दिन — लोगों के नियत दिवस तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त उनके न्याय-निर्धारण के लिये ईश्वर प्रकट होंगे। उस समय हज़रत मुहम्मद साहब 'शफी' का पद ग्रहण करेंगे। तब प्रत्येक व्यक्ति से उसके जीवन के समस्त कर्मों के सम्बन्ध में पूछताछ की जायगी। कुछेक का कथन है कि शरीर के समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गों में से जिस के द्वारा जो पाप हुआ है उससे वह स्वीकार कराया जायगा। प्रत्येक मनुष्य को एक पुस्तक दी जायगी जिसमें उसके कर्मों का लेखा लिखा होगा। इन पुस्तकों को एक तुला-द्वारा तोला जायगा, जिसे इसराईल उठावेगा। जिन लोगों के शुभ कर्मों का पल्ला अशुभ कर्मों के पल्ले की अपेक्षा भारी होगा वे सीधे स्वर्ग को भेजे जावेंगे। और जिनके कुकर्मों की मात्रा अधिक होगी उन्हें नरक का मार्ग ग्रहण करना होगा. यह विचार सर्वांश में यहूदियों से लिया गया है। डाक्टर सेल लिखते हैं कि "पुराने यहूदी लेखक लोग भी अन्तिम दिन उपस्थित की जाने वाली उन पुस्तकों का वर्णन करते हैं जिनमें मनुष्य के कर्मों का लेखा लिखा होगा, और इन

+ सेल का कुरान भूमिका, पृ० १८।

तराजुओं का भी वर्णन करते हैं जिसमें ये तोली जावेंगी।"*

यहूदियों ने यह विचार ज़रदुश्तियों से लिया। डाक्टर सेल संकेत करते हैं कि दोनों के विचारों की नींव पुरानी 'धर्म पुस्तक' जान पड़ती है। (यात्रा की पुस्तक ३२। ३२-३३, दानयाल ७। १०, ईश्वरीयज्ञान २०। १२, दानयाल ५। २७) परन्तु वे स्वीकार करते हैं कि तुला के विषय मे पारसी लोगों का जो विश्वास है वह मुसलमानों के विचार से वहुत मिलता-जुलता है। उनका विश्वास है कि न्याय-व्यवस्था के दिन मेहर और सरूश दो देवदूत जिनका वर्णन हम आगे करेंगे, पुल पर खड़े होंगे। ये लोग पुल को पार करने वाले प्रत्येक मनुष्य की परीक्षा लेंगे। पहिला दूत जो ईश्वरीय दया का प्रतिनिधि है लोगों के कर्मों को तोलने के लिए एक तराजू हाथ मे लिए रहेगा। इसकी सूचना के अनुसार ही ईश्वर आज्ञा देगा। जिनके सुकर्मों का पल्ला वोझ से वाल-भर भी झुक जायगा उनको स्वर्ग में जाने की आज्ञा दी जायगी। लेकिन जिनके शुभकर्मों का पल्ला हलका रहेगा वे ईश्वरीय न्याय के प्रतिनिधि दूसरे दूत द्वारा पुल से नरक में ढकेल दिये जावेंगे।

स्वर्ग के मार्ग पर एक पुल है जिसका नाम हज़रत मुहम्मद ने अलसिरात † रक्खा है। यह पुल नरक कुण्ड के ऊपर वना हुआ है. वह वाल से भी अधिक सूक्ष्म और तलवार की धार से भी अधिक तीव्र वताया जाता है। इस पुल से मुसलमान लोग मुहमम्द साहव के पीछे-पीछे सुगमता पूर्वक पार उतर जावेंगे। परन्तु दुष्ट लोगों का पैर फिसल जायगा जिससे वे अपने नीचे के विशालमुखोन्मुक्त नरक में धड़ाम से सिर के वल जा पड़ेंगे। यहूदी लोग भी नरक सेतु का इसी प्रकार वर्णन करते हैं। उनके मतानुसार उसकी चौड़ाई धागे से अधिक नहीं

* देखो Midrash yalkut, Shemum, p. 153, c. 3, and Gemar Sauhedr, p. 91.

† सेलका कुरान, भूमिका, पृ० ७१। देखो ज़न्दावस्ता भाग ३, मन्युखुर्द, पृ० १२४ (S. B. E. Series)

है। इस विचार के लिये यहूदी और मुसलमान दोनों समानरूप से जरदुश्त के कृतज्ञ जान पड़ते हैं, जिसकी शिक्षा है कि अन्तिम दिन सब लोगों को चिनवद पुल पार करना होगा * ।

स्वर्ग-अलसिरात को पार करके धर्मात्मा लोग स्वर्ग में पहुँच जावेंगे जो सातवें आसमान पर स्थित है। मुसलमानों के मत में स्वर्ग एक उद्यान है, जो झरनों और फव्वारों से सजा है, जिसमें जल, दूध और बैलसाम (Balsam) की नदियाँ बह रही हैं, वृक्षों के सुन्दर तने हैं और उन पर परम स्वादिष्ट फल लगते हैं। इन से बढ़ कर स्वर्ग में ७० सुन्दर और मनोहारिणी नवयुवतियाँ होंगी जो अपने विशाल श्याम नेत्रों के कारण हूरल अयून कहलाती हैं। प्रायः इस समस्त वर्णन के लिये मुहम्मद साहब यहूदियों के आभारी हैं। "यहूदी लोग भी पुण्यात्मा लोगों के भावी निवास-स्थान को एक सुन्दर उद्यान बताते हुए उसकी स्थिति सातवें आसमान पर ही मानते हैं। (देखो Gemar Tamth, p 25, Bnacath d. 34, Midrash Labbath p. 37) उनका यह भी कथन है कि उसमें तीन द्वार और ४ नदियां हैं जिनमें दूध, मदिरा, बैलसाम और मधु, प्रवाहित रहते हैं।" (Midrash, yalkut-Shewme) †

बहुत सम्भव है कि स्वयं यहूदियों ने यह विचार पारसियों से लिया हो, क्योंकि वह भी स्वर्ग की सुन्दरता का इसी प्रकार की भाषा में वर्णन करते हैं। डाक्टर सेल लिखते हैं कि "पारसी विद्वानों का पुण्यात्मा लोगों की आगामी दशा व अवस्था के सम्बन्ध में जो विचार है उस और मुहम्मद साहब के विचार में बहुत थोड़ा अन्तर है। वे स्वर्ग को [illegible] और [illegible] कहते हैं जिसके [illegible] का [illegible] है। उनका विश्वास है कि यहाँ धर्मात्मा लोग सब प्रकार के आनन्दों का उपभोग करेंगे, जिनमें विशेषकर श्याम नेत्र वाली [illegible] . ...

---

* सेल का कुरान, भूमिका पृ० ७।

† सेल का कुरान, भूमिका पृ० ७१

नामक उन स्वर्गीय रमणियों का सहवास है जो जमियाद फ़रिश्ते के संरक्षण में रहती हैं। यहीं से मुहम्मद साहब ने अपनी स्वर्गीय रमणियों का संकेत ग्रहण किया।" *

यहाँ हम पारसियों के 'नामामिह्याबाद' नामक एक पिछले ग्रन्थ से कुछ उद्धरण देते हैं।—"स्वर्ग की सब से तुच्छ कक्षा यह है कि वहाँ के निवासी समस्त सांसारिक सुखों का उपभोग करते हैं अर्थात् सुन्दरियाँ, दास, दासी माँस और मदिरा, कपड़े और बिछौने, सजाने का सामान तथा अन्य पदार्थ जिनकी यहाँ गणना नहीं की जा सकती।" (मिह्याबाद ४०। ४१) †

नरक—इसी प्रकार नरक की विविध प्रकार की यातनाएँ, उसका सात विभागों में विभक्त होना, स्वर्ग से नरक को पृथक् करने वाला 'अलऐराफ़' नामक स्थान आदि सब बातें यहूदियों से नक़ल की हुई जान पड़ती हैं।

३—ईश्वर और शैतान।

मुसलमान लोगों का ईश्वर विषयक मन्तव्य यहूदियों के मन्तव्य से प्राय पूर्णतया मिलता है। यह सिद्धान्त भी यहूदियों ही से लिया गया कि संसार में दो शक्तियाँ विद्यमान हैं—एक अच्छी और शुभकारिणी शक्ति अर्थात् ईश्वर, दूसरी बुरी और अशुभकारिणी शक्ति अर्थात् शैतान। उपरोक्त विचार जो बाइबिल और कुरान के एक ईश्वरवाद पर धब्बा लगाता है निश्चय रूप से यहूदियों ने ज़रदुश्तियों से लिया जो उन शक्तियों को स्पन्तामन्यु और अंगिरामन्यु कहते हैं। आगे चल कर †† हम इस प्रश्न पर अधिक विस्तार से विचार करते हुए यह सिद्ध करेंगे कि जरदुश्तयों की इस बात का पता वेदों के उस सुन्दर अलङ्कार में लगता है जिसमें संसार के पुण्य और पाप के संग्राम का वर्णन किया गया है। उस अलङ्कार को ठीक-ठीक न समझने का यह परिणाम हुआ

---

*भूमिका पृष्ठ ७८

†इस पुस्तक का अ० ४ अं० ८ भी देखो।

††देखो अध्या० ४ अंश ४

कि यहूदी, ईसाई और मुसलमानों ने इसे बिगाड़ कर दो अलग शक्तियों का विश्वास रच लिया। शैतान का अधिकार इतना बढ़ाया गया कि वह ईश्वर से कुछ ही कम रह गया। यह एक महत्त्वपूर्ण विषय है। इसके द्वारा यह भली भाँति स्पष्ट हो जायगा कि धार्मिक विचारों की धारा वेदों से जन्दावस्ता तक और वहाँ से बाइबिल व कुरान तक किस प्रकार बही है।

४—विहित कर्म।

हमने अब तक यह दिखलाया है कि मुसलमानों ने ज्ञान-काण्ड-सम्बन्धी मुख्य सिद्धान्त यहूदियों से लिये हैं। परन्तु अब हम यह दिखावेंगे कि इनके कर्म-काण्ड की भी उत्पत्ति उन्हीं से हुई।

प्रत्येक मुसलमान को नीचे लिखे चार कर्म अवश्य करने चाहियें अर्थात् नमाज़, रोज़े, दान और मक्का की यात्रा या हज।

(१) नमाज़*-पारसियों की अवस्ता के निम्नलिखित वचनों से पाठकों को यह बात ज्ञात होगी कि मुसलमानी लोगों की नमाज़ के या प्रार्थना-समय की कतिपय अङ्गसञ्चालनादि सम्बन्धी बातें सम्भवतः ज़रदुश्तियों से नक़ल की गई हैं।

"नमाज़ पढ़ने समय पवित्र बुद्धिमान मनुष्य आगे खड़ा हो और शेष सब उसके पीछे। नमाज़ के समय मनुष्य दोनों हाथ मिलाकर सीधा खड़ा हो, फिर नीचे की ओर झुके, फिर धरती पर घुटनों के बल बैठ जावे। फिर सीधा हो [illegible] हाथ अपने सिर पर रख ले। इसके उपरान्त अपना सिर ऊँचा करे और अंगूठों [illegible] मिलावे दोनों हाथों को मिलावे। अंगूठों को अपनी आँखों पर इस प्रकार रक्खे कि हाथों की अँगुलियाँ सिर तक पहुँच जावें। फिर अपने सिर को हाथों की ओर झुका कर उठावे, और धरती पर बैठ जावे। इसके पीछे अपने हाथ ज़मीन पर टेक घुटनों के बल बैठ कर अपने मस्तक को धरती से लगावे और फिर हाथ से दोनों ओर से उठा हुआ और तदुपरान्त धरती पर [illegible] के समान लेट जावे, फिर हाथों से इतना

* नमाज़ शब्द अरबी नहीं किन्तु पारसी है और संस्कृत नम से बना है।

फैलावे कि छाती से धरती छू जावे। इसी प्रकार जंघाओं में करें। फिर घुटनों के सहारे झुके, फिर चार ज़ान्नू बैठे और फिर हाथों को जोड़ कर उन पर सिर रक्खे। इस प्रकार की नमाज ईश्वर के सिवाय अन्य किसी के प्रति न पढ़नी चाहिये। †

मुसलमानों मे जो क़अबे की ओर मुँह करके नमाज पढ़ने की प्रथा प्रचलित है वह भी यहूदियों से ग्रहण की गई। क्योंकि वह भी अपना मुँह यरुसलम के मन्दिर की ओर करके नमाज़ पढ़ा करते हैं। डाक्टर सेल लिखते हैं कि '६ या ७ मास तक (कोई-कोई १८ महीने बताते हैं, देखो) (Abulfednit mah, p. 54.) मुहम्मद साहब व उनके अनुयायियों का किबला भी यरूसलम ही रहा, अर्थात् जब तक वे क़अबे को अपना 'क़िबला' बनाने के लिये वाध्य न हुए।" ❀

नमाज़ के पूर्व रेती या जल से हाथ पाँव धोने की क्रिया भी यहूदियों और पारसियों से ली गई है। खतने की प्रथा के सम्बन्ध में तो यह प्रसिद्ध है कि वह यहूदियों से ग्रहण की गई।

(२) रोजे (उपवास)—रोजों के सम्बन्ध में मुहम्मद साहब के आदेश का वर्णन करते हुए डाक्टर सेल यहूदियों तक उसका पता लगाते हैं। वे लिखते हैं कि "यहूदी लोग जब उपवास करते हैं तब वे दिन निकलने से लेकर सूर्यास्त तक केवल खान-पान ही नहीं छोड़ देते प्रत्युत स्त्री और तैल मर्दन से भी बचते हैं और रात को जैसा चाहते हैं भोजन करने में व्यतीत करते हैं। (Gemar yama, P. 40, etc)"

(३) खैरात (दान)-इसके दो भेद हैं, १—जकात और २—सदका। इनके लिये विशेष नियम निर्धारित किये गये हैं। डाक्टर सेल के मतानुसार इन नियमों में भी यहूदियों के पद-चिन्हों का पता लगता है। (देखो सेल साहब के कुरान की भूमिका पृ० ८७)

(४) हज अर्थात मक्का-यात्रा। मक्का-यात्रा की विधि यहूदियों से नहीं

---

† यासान प्रथम ५६—६१

❀ सेल का कुरान भूमिका, पृ० ८५

ली गई प्रत्युत वह मूर्त्ति पूजक अरब निवासियों का [illegible] है। अरब लोग मक्का के मन्दिर को चिरकाल से बहुत प्रतिष्ठा करते थे और नबी ने उनके इस विश्वास में हस्तक्षेप करना उचित न समझा।

५—निषिद्ध कर्म।

जुआ, मदिरा-पान, ब्याज लेना तथा कई प्रकार के वर्जित मांसों का सेवन, ये कुछ ऐसे निषिद्ध कर्म हैं जो यहूदी और मुसलमान दोनों [illegible] समान हैं। अभक्ष्य मांसों के बारे में कुरान में लिखा है कि [illegible] उनके मांस का भक्षण करना वर्जित है जो [illegible] और शूकर मांस [illegible] तथा उनका [illegible] पर ईश्वर के [illegible] किसी के नाम का पाठ किया गया हो, [illegible] अथवा चोट से निकाले गये हों, [illegible] से [illegible] इन [illegible] तुमने स्वयं न मारा हो अथवा जो किसी मूर्ति के [illegible] हो।" डाक्टर [illegible] —"[illegible] कुरान [illegible] जानों का [illegible] यहूदियों से लिया, क्योंकि [illegible] जैसा कि प्रसिद्ध है—इन सब वस्तुओं का निषेध है। पर [illegible] कुछ ऐसी वस्तुओं को खाने की आज्ञा दी है जिनका [illegible] ने नहीं किया था।" (देखो दाइबिल [illegible] [illegible])

६—सामाजिक प्रथाएं।

मुसलमानों की सामाजिक प्रथाएं [illegible] जिस प्रकार यहूदियों [illegible] होगा कि मुसलमानों ने इस विषय में भी यहूदियों [illegible] —

१—[illegible] ([illegible]) [illegible] विधान है; परन्तु मुसलमानों [illegible] साथ विवाह करने की आज्ञा नहीं। [illegible] के सम्बन्ध में लिखते हैं—[illegible]

• [illegible]

यहूदी आचार्यों की व्यवस्था का अनुकरण किया है जिन्होंने सलाह के तौर पर चार स्त्रियों तक की सीमा रक्खी है (देखो Maimon in Halachath Ishath, C. 14) यद्यपि उनके शास्त्र मे स्त्रियों की किसी संख्या का प्रतिबन्ध नही है।" (सेल का कुरान भूमिका पृ० १०४)

स्त्री-त्याग—(तलाक़) की प्रथा भी दोनों मतों मे समान रूप से प्रचलित हैं। स्त्री-त्याग का विधान करने मे मुहम्मद साहब ने यहूदियों का का अनुगमन किया है। जब कोई स्त्री त्याग दी जावे तो उसे अपना पुनर्विवाह करने के पूर्व ३ मास पर्यन्त प्रतीक्षा करनी चाहिये। इस अवधि को 'इद्दत' कहते हैं। इस अवधि के अन्त मे यदि वह गर्भिणी सिद्ध हो तो बालक प्रसव करने तक दूसरा विवाह नहीं कर सकती। डाक्टर सेल लिखते हैं कि—"यह नियम भी यहूदियों से लिए गये, क्योंकि उनके मतानुसार किसी त्यक्त अथवा विधवा स्त्री को पति के त्यागने अथवा मृत्यु होने से ९० दिन तक दूसरे पुरुष के साथ पुनर्विवाह करने का अधिकार नहीं है।" डाक्टर सेल का यह भी कथन है कि—'स्त्रियों के मासिक-धर्म समय की अशौचता, दासियों को स्त्री बनाना तथा किन्हीं निश्चित सम्बन्धों मे विवाह-वर्जन आदि विषय मे भी मुहम्मद साहब के आदेशों की हज़रत मूसा के विचारों से समानता कुछ कम नहीं है।

७—कुछ साधारण समानताएँ—

१—सप्ताह का एक दिन ईश्वर की विशेष उपासना के लिये पृथक् रखना भी यहूदियों की ही प्रथा है। वे शनिवार को पवित्र मानते हैं। ईसाई लोगों ने अपना 'विश्राम दिवस' रविवार को निश्चित किया। मुहम्मद साहब ने इस सम्बन्ध मे इन मतों का अनुकरण किया है परन्तु कुछ अन्तर रखने के विचार से उन्होंने अपने अनुयायियों को शनिवार और रविवार के स्थान में शुक्रवार को पवित्र दिन मानने की आज्ञा दी।

२—कुरान का प्रसिद्ध मूलसिद्धान्त "ला इलाह इल्लिल्लाह" (खुदा के अतिरिक्त कोई खुदा नहीं) ज़रदुश्तियों के "नेस्तेजद मगर यज़दां" का उल्था मात्र है।

३—इस बात का भी लिखना उचित है कि [illegible] छोड़ कर कुरान के शेष सब [illegible] "[illegible]" इन शब्दों से प्रारम्भ होते हैं। [illegible] जिसको वे अपनी पुस्तकों के आरम्भ में लिखते हैं। "[illegible] बख्शिशगरदातार" ([illegible] नाम [illegible] जो [illegible] और देने वाला है)।

८—सारांश—

उपर्युक्त बातें यह सिद्ध करने के लिये [illegible] मत ने प्रायः समस्त धार्मिक विचार और [illegible] और किसी अंश में [illegible] से [illegible] कोई नवीन ईश्वरीय ज्ञान अथवा ईश्वर [illegible] प्रचार का दावा नहीं कर सकता। [illegible] यह कहेंगे कि "कुरान का एक [illegible] पवित्र और [illegible] है। और [illegible] ही नहीं, क्योंकि यह तो ईश्वरीय [illegible] एक [illegible] नहीं हो सकता"। [illegible]

[illegible]

हैं। दोनों ही शैतान को प्रायः ईश्वर के समान मान कर अपने अद्वैतवाद की शुद्धता को कलंकित करते हैं। दोनों के ईश्वर विषयक एक से ही विचार हैं। यहूदियों का 'जैहोवा' (Jehova) जो मनुष्यों के से गुण वाला, चलचित्त, बदला लेने वाला, कुरान के अल्लाह से पूर्ण सादृश्य रखता है, जो एक असहिष्णु और स्वेच्छाचारी सम्राट् के समान वर्णित है, जो अपने पूजकों को 'काफ़िरों' के साथ धर्म युद्ध करने और उनका संहार करने की आज्ञा देता है।

रहा ज़रदुश्ती मत का ईश्वर विषयक विश्वास, वह यहूदियों वा मुसलमानों के आस्तिकवाद से किसी प्रकार भी घटकर नहीं है। पादरी ऐल० ऐच० मिल्स का कथन है कि अब तक जितने शुद्ध-से-शुद्ध विचार उपस्थित किये गये हैं उनमें 'अहुरमज़दा' का विचार भी है*। हम यह भी कह सकते हैं कि निःसन्देह वह कुरान और बाइबिल के ईश्वर का वास्तविक मूल रूप है। हम इस विषय पर आगे चल कर विस्तार पूर्वक विचार करेंगे†। एक ईश्वरवाद के विषय में मुहम्मद साहब की शिक्षा का गौरव इसलिये अवश्य है कि उन्हों ने उस समय के बिगड़े हुए ईसाईमत वा उन अरब निवासियों की बहुदेव पूजा का विरोध किया कि जिनमें वे स्वयं रहते थे। मुहम्मद साहब के समकालीनों के विचारों से उनकी शिक्षा कितनी ही उत्तम क्यों न समझी जावे परन्तु कुरान का 'ईश्वरवाद' यहूदियों के ईश्वरवाद से अधिक श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। अतएव यह प्रतिज्ञा कि कुरान की ईश्वर विषयक शिक्षा यहूदी और ज़रदुश्ती ईश्वरवाद से (जिनसे वह निकली है) अधिक उत्तम है और इसलिये कुरान ईश्वर का विशेष वा स्वतन्त्र ज्ञान है, सिद्ध नहीं हो सकता।

---

*ज़न्दावास्ता भाग ३ पृ० ३८ (S. B. E. Series.)

†देखो अध्याय ४ अं० ३। और अध्याय ५ अं० ५।

द्वितीय अध्याय

ईसाईमत का आधार विशेषतः यहूदी मत और अंशतः बौद्धधर्म है।

—:o:—

"जो अब ईसाई धर्म कहा जाता है वह प्राचीन लोगों में भी था, और वह मानव जाति के आरम्भ काल से लेकर ईसामसीह के शरीर धारण करने तक बराबर उपस्थित रहा। हजरत ईसा के उत्पन्न होने के समय से उस पूर्ववर्त्ती धर्म का नाम ईसाई मत पड़ा"

(सेन्ट औगस्टाइन)

१—यहूदीमत और ईसाईमत।

ख्रीष्ट मत के समस्त सिद्धान्त जैसा कि स्वयम् उसके अनुयायी भी स्वीकार करते हैं यहूदीमत से लिये गये। ईसाई लोग "पुरानी धर्म पुस्तक" को यहूदियों के सदृश ही ईश्वरीय वाक्य मानते हैं। हजरत ईसा ने—जो जन्म के यहूदी थे—यहूदीमत को लुप्त करके अपना नवीन धर्म स्थापित करने की कभी इच्छा नहीं की। ईसामसीह ने अपने 'पर्वत उपदेश' में प्राचीन धर्मों के सम्बन्ध में अपने विचारों को स्पष्ट रूप से प्रकट किया है—"यह मत समझो कि मैं तौरेत अथवा नबियों को नष्ट करने आया हूँ। नष्ट करने को नहीं प्रत्युत उन्हें पूर्ण करने के लिये मेरा आगमन हुआ है। मैं तुम से सच कहता हूँ कि जब तक पृथ्वी और आकाश स्थिर हैं तब तक तौरेत से एक बिन्दु या मात्रा भी दूर न होगा जब तक कि वह सर्वांग सम्पन्न न हो जाये। इसलिये, जो व्यक्ति छोटी-छोटी भी आज्ञाओं को भङ्ग कर लोगों को तदनुसार ही सिखलायेगा वह स्वर्ग साम्राज्य में लघुतम कहलायेगा और जो उन्हें स्वयम् कार्यरूप में परिणित करता हुआ दूसरों से भी ऐसा ही करावेगा वह महान कहा जावेगा"। (मती की इंजील अ० ५ श्लो० १७—१९)

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है "तो क्या यहूदी और ईसाईमत में कुछ अन्तर ही नहीं ? क्या इन दोनों की शिक्षा एक ही है ? क्या इन दोनों के मध्य भेद प्रकट करने की कोई बात नहीं ?" इन सब प्रश्नों का हम यह उत्तर देंगे कि ईसाइयों के आध्यात्मिक सिद्धान्त निश्चय रूप से वही हैं जो यहूदियों के हैं, लेकिन उनके सदाचारिक उपदेश यहूदीमत के आचार्यों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ एवं उच्चतर हैं। इन दोनों मतों का भेद स्वयम् ईसामसीह ने अपने उस आत्मोन्नायक 'पर्वती व्याख्यान' में बड़ी स्पष्ट रीति से दिखाया है जिस के कुछ वचन हम पूर्व भी उद्धृत कर चुके हैं।

"मैं तुम से कहे देता हूँ कि यदि तुम्हारी सत्यनिष्ठा धर्म व्याख्यानाओं (Scribes) और फारसी लोगों की सत्यनिष्ठा से बढ़ कर न होगी तो तुम किसी दशा में भी 'स्वर्गसदन' में प्रवेश न कर सकोगे।"

"तुम श्रवण कर चुके हो कि पूर्व पुरुषाओं से कहा गया था कि हिंसा मत करना, जो कोई हिंसा करेगा उसे न्यायव्यवस्था का दण्ड भोगना पड़ेगा, परन्तु मैं तुम से कहता हूँ कि जो कोई अकारण ही अपने भाई से रुष्ट रहेगा वह दण्ड पाने के योग्य समझा जायगा, जो कोई अपने भाई को विक्षिप्त कहेगा वह 'विचार-सभा' से दण्ड पावेगा। परन्तु जो कोई उसे मूर्ख बतावेगा वह नरक में डाला जावेगा। इसलिये यदि तू यज्ञ वेदी पर अर्पण करने को कुछ भेंट लावे और वहाँ तुझ को स्मृति हो कि मेरा भाई मुझ से कुछ अप्रसन्न है तो तू भेंट वहीं छोड़ कर पहले उससे प्रेम कर और पीछे भेंट को वेदी पर चढ़ा। जब तू मार्ग में अपने शत्रु के साथ हो तो उससे तुरन्त मेल करले, ऐसा न हो कि किसी समय शत्रु तुझे न्यायाधीश को सौंप दे और वह तुझे अफ़सर के हवाले करदे जिससे तुझे कारागार भोगना पड़े। तुझ से निश्चय रूप से कहता हूँ कि जब तक तू कौड़ी कौड़ी का भुगतान न कर देगा तब तक उस बन्धन से कदापि मुक्त न होगा।"

"तुमने सुना है कि प्राचीन लोगों से कहा गया था कि व्यभिचार न करना, परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि यदि किसी ने पर-स्त्री की ओर

कुदृष्टि से देखा तो समझना चाहिये कि वह उसके साथ [illegible] व्यभिचार कर चुका। यदि तेरी सीधी आँख तुझे [illegible] तो उसे पृथक् करदे क्योंकि तेरे लिये यह लाभदायक है कि तेरे शरीर के [illegible] यवों में से एक नष्ट हो जाय और सारा शरीर नरक में [illegible] जावे। और यदि तेरा सीधा हाथ [illegible] करे तो उसे [illegible] क्योंकि तेरे लिये यही उपयोगी है कि सारा शरीर नरक [illegible] कर केवल एक अवयव को पृथक् करे। [illegible] यदि कोई अपनी स्त्री को छोड़ दे तो उसे 'त्याग-पत्र' [illegible] मैं तुम से यह कहता हूं कि जो कोई [illegible] अन्य किसी कारण वश त्याग करता है वह [illegible] चलन से ला भागी है, और जो कोई उस [illegible] वह उसके साथ व्यभिचार करता है।"

"फिर तुम सुन चुके हो कि पूर्वजों से [illegible] स्वार्थवश शपथ न खाना प्रत्युत ईश्वर के लिये [illegible] मैं तुमसे यह कहता हूं कि तुम शपथ ही न [illegible] की कसम खाना क्योंकि वह ईश्वर का सिंहासन [illegible] क्योंकि वह ईश्वर का [illegible]

[illegible]

तक चले जाओ। जो कुछ वह तुम से माँगे उसे दे और जो तुमसे ऋण-याचना करे उससे मुँह मत फेर ले।"

"तुम इस बात को श्रवण कर चुके हो कि 'तू अपने पार्श्ववर्त्तियों से प्रेम और शत्रुओं पर से घृणा कर, लेकिन मैं तुमसे यह कहता हूँ कि शत्रुओं पर प्यार करो। जो तुमको कोसें उन्हे आशीर्वाद दो जो तुम से घृणा करें उनसे प्रेम करो, जो तुमसे द्वेष करें या कष्ट पहुंचावें उनके लिये ईश्वर से प्रार्थना करो जिससे तुम अपने स्वर्गीय पिता के प्यारे पुत्र बनो, क्योंकि वह भले-बुरे दोनों पर सूर्य की किरणें पहुँचाता है, सच्चे और झूठे दोनों पर जल-वृष्टि करता है। जो लोग तुम पर प्रेम करते हैं उन्हीं पर तुम भी प्रेम करो तो तुम्हारे लिये क्या लाभ होगा? क्या कर-ग्राही लोग ऐसा ही नहीं करते? यदि तुम अपने भाइयों को ही अभिवादन करते हो तो अन्यों की अपेक्षा कौनसा बड़ा कार्य करते हो? तुमको अपने स्वर्गीय पिता के समान पूर्ण बनना चाहिये"। (मत्ती रचित इंजील अ० ५ आ० २०-४८)

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि सदाचारिक शिक्षाओं के सम्बन्ध में यहूदियों की अपेक्षा ख्रीष्टमत अधिक उन्नत है। आत्मनम्रता, सच्चरित्रता, शुद्धता, क्षमाशीलता, लौकिक वासनाओं में अश्रद्धा, शान्ति, दान, सज्जनता, सहिष्णुता, प्रेम-निदान मनुष्य जीवन का उच्चतम आदर्श और सदाचार का श्रेयस्कर शास्त्र-ये ही बातें हैं जिनसे यहूदियों के प्राचीन-तर धर्म ख्रीष्टमत के बीच भेद जाना जाता है। परन्तु यह बातें ईसाईमत की मौलिक बातें नहीं प्रत्युत बौद्धधर्म के प्रभाव से हैं।

ईसाईमत पर बौद्धधर्म का प्रभाव।

२—सम्बन्ध का मार्ग।

महाशय रमेशचन्द्रदत्त लिखते हैं कि बौद्धधर्म के सदाचारिक सिद्धांत और शिक्षाएँ ईसाईमत के सिद्धान्तों से इतने मिलते-जुलते हैं कि बहुत दिनों से इन दोनों धर्मों के मध्य कोई सम्बन्ध होने का सन्देह किया

जा रहा है। † यूनान में बुद्ध की शिक्षा ईसामसीह के जन्म से बहुत पूर्व प्रवेश कर चुकी थी। महाराज अशोक के गिरनार के शिला लेखों से पता चलता है कि उनके राज्यकाल में बौद्ध प्रचारक, सीरियादेश में अपना धर्म फैलाने के लिये गये थे। प्लिनी (Pliny the naturalist) नामक तत्त्ववेत्ता (प्रथम शताब्दी का प्रसिद्ध रोमन इतिहास वेत्ता) पैलस्टाइन में ईसा से कोई एक शताब्दी पूर्व ऐसेनेस (Essenes) * नामक सम्प्रदाय का उल्लेख करता है। अर्वाचीन खोज से सिद्ध हुआ कि वह सम्प्रदाय बौद्धधर्म की एक शाखा रूप था। मिश्रदेश में भी इसी प्रकार का थेरापेंटे (Therapautae) नामक एक सम्प्रदाय विद्यमान था। इस बात को ईसा-चरित्र (Life of Jesus) के सुप्रसिद्ध लेखक पादरी रेनन साहब जैसे विद्वान भी स्वीकार करते हैं कि उक्त सम्प्रदाय ऐसेनेस या दूसरे शब्दों में बौद्धधर्म की शाखा स्वरूप था। वे लिखते हैं कि "मिश्र के थेरापेट ऐसेनेस की शाखा है। उनका नाम यूनानी भाषा में ऐसेनेस का उल्था मात्र जान पड़ता है। ‡ इस प्रकार हमें पता लगता है कि ईसा के जन्म से पूर्व पैलस्टाइन सीरिया और मिश्र में बौद्धधर्म पूरा प्रचार पा चुका था। और पैलस्टाइन के ऐसेनैसों में बौद्धधर्म के सिद्धान्त साधारण रीति से पालन किये जाते थे। श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त का कथन है कि कुछ लोग ईसाई इस बात को मानते हैं कि सीरिया में बौद्ध-धर्म (प्रोफेसर महाफी के शब्दों में) उस मत का सहायक अवश्य बना जिसका प्रचार ईसामसीह ने दो शताब्दियों से भी अधिक समय के पश्चात् किया ‡"। हम यह जानते हैं कि ईसा का अपनापन [illegible] 'जैन' [illegible] की शिक्षाओं

---

† Civilisation in Ancient India, Vol. II, [illegible]

* Historia Naturalis vol. V, 17. quoted in R. C. Dutt's Ancient India, Vol. II, [illegible]

‡ Quoted in Ancient India, Vol. II, [illegible]

‡ Ancient India, Vol. II [illegible]

से भली भाँति अभिज्ञ था। कुछ ग्रन्थकारों की सम्मति है कि वह स्वयं भी ऐसेनैस अर्थात् बौद्ध था। अतएव अब यह स्पष्ट है कि हजरत ईसा मसीह ने वपतिस्मा देने वाले से बौद्धधर्म की शिक्षा और संस्कारों के सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया। उपरोक्त घटनाएँ बौद्ध और ईसाई धर्म के बीच परस्पर सम्बन्ध का मार्ग वा द्वार दिखलाने के लिये पर्य्याप्त हैं।

२---उपदेशों की समानता।

परस्पर सम्बन्ध की सम्भावना को दिखलाने के उपरान्त अब हम बुद्ध और ईसा के कुछ उपदेशों को बराबर बराबर रखते हैं, जिनसे यह ज्ञात होगा कि वे भाव और भाषा में एक दूसरे से किस घनिष्टता के साथ समता रखते हैं।-

बुद्ध	ईसा
१-अरे मूर्ख! इन जटाओं और मृगछाला धारण से क्या लाभ है? तेरा अन्तःकरण मलीन हैं पर बाहर से स्वच्छता का आडम्बर बनाये हुये हैं। (धम्मपद ३९४)	१-धर्मग्रन्थ लेखक और फैरसियो तुम पर शोक होता है, क्योंकि तुम सफ़ेदी से पुती हुई उस कब्र के अनुसार हो जो बाहर तो सुन्दर दिखाई देती है परन्तु भीतर मृतकों की अस्थियाँ तथा अन्य मलिन वस्तुओं से परिपूर्ण है। (मत्ती की इंजील २३। २७) प्रभु ने उनसे कहा कि एफ़रिसी! तुम प्याले और तश्तरियों को तो बाहर से साफ़ करते हो परन्तु तुम्हारा अन्तःकरण लूट खसोट और धूर्त्तताओं से भरा हुआ है। (लूक की इंजील ११। ३९)

हैं और जीवन से प्रेम करते हैं, स्मरण रखो तुम भी उन्हीं के सदृश हो। न तुम स्वयम् हिंसा करो न हत्या कराओ।

(धम्मपद, १३०*)

अपने लिये कराना चाहते हो वैसा ही उनके साथ तुम भी करो।

(लूक ६। ३१)

६—दूसरों का दोष सहज ही में दीख पड़ता है। परन्तु अपने दूषण देखना कठिन है। आदमी अपने पड़ोसियों के अवगुणों को भूसा की तरह छान फटक डालता है परन्तु अपने दोषों को इस प्रकार छिपाता है जैसे ठग झूठे पाँसों को ज्वारी से छिपाता है।

(धम्मपद) ‡

६—अपने भाई की आँखों के तृण को तो देखता है लेकिन स्वयम् अपने नेत्रों की शहतीर की ओर क्यों विचार नहीं करता।

(मत्ती ७। ३)

इस प्रकार हम देखते हैं कि आन्तरिक पवित्रता, मृदुता, क्षमा, शीलता, अपकार के बदले उपकार करना आदि बातें बौद्धधर्म के ऐसे

---

* इसी प्रकार महाभारत में कहा है:—

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वाचैवावधार्य्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषान्न समाचरेत्॥

धर्म का सार श्रवण करो और सुनकर उसे धारण करो। जो बात तुम अपने लिये पसन्द नहीं करते उसे दूसरों के लिये भी मत करो।

‡ इसी प्रकार नीति में कहा है:—

खलः सर्षप मात्राणि परछिद्राणि पश्यति।
आत्मनो बिल्व मात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति॥

दुष्ट आदमी दूसरों के सरसों-भर दोष को भी देखता है, परन्तु अपने बेल के बराबर दोषों को भी जान-बूझ कर नहीं देखता।

की स्पष्ट चिन्ह हैं जैसे कि ईसाईधर्म में।

'नवीन धर्म पुस्तक' (अर्थात् इंजील) की कथायें भी बौद्धधर्म की कथाओं से बहुत कुछ समता रखती हैं और सम्भवतः उन्हीं से ली गई हैं। श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त लिखते हैं कि "रेनन (Renan) भी जो ईसाईमत की रचना में बौद्धधर्म का प्रभाव स्वीकार करने का विरोधी है—लिखता है कि यहूदीमत में ऐसी कोई बात नहीं थी जो ईसामसीह की कथाओं की शैली का निदर्शन होता। दूसरी ओर बौद्धधर्म के ग्रन्थों में हमें ठीक उसी रंग-ढंग की दृष्टान्त कथायें मिलती हैं जैसी कि इंजील में हैं।" (रेनन-कृत ईसामसीह की जीवनी का अनुवाद पृ० २६)

समानता दिखाने वाली कुछ दृष्टान्त-कथाओं को उद्धृत करने के लिये हमारे पास स्थान नहीं है। उदाहरणार्थ हम पाठकों से 'बीज बोने की कथा' का संकेत करते हैं जो "सद्धर्म सूत्र" में है और जिसकी तुलना युहन्ना के पंचम अध्याय की १९ आयत से कीजिये, और "धनिया सुत्त" में 'धनिया की कथा' लूका के १२ वें अध्याय की १६ आयत के बिलकुल समान है।

४—विहार या साधुआश्रम और कर्म काण्ड सम्बन्धी समानता—

डाक्टर फरगुसन साहब जिनकी सम्मति भारतीय [illegible] विषय पर सबसे प्रामाणिक समझी जाती है [illegible] गुहा मन्दिर या [illegible] ईसाइयों के [illegible] अपने ग्रन्थ में लिखते हैं [illegible] से बहुत कुछ समानता रखता है [illegible] और [illegible] दोनों ओर [illegible] [illegible] Abhandlungen [illegible] [illegible]

जावे। गुम्बद के ठीक नीचे और जहाँ ईसाई गिरजों में प्रायः यज्ञवेदी बनी होती है 'दागोपा'* स्थित है।

श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त लिखते हैं कि "बौद्ध और रोमन कैथेलिक ईसाइयों के धार्मिक कृत्यों की समानता के सामने यह भवन-कला सम्बन्धी समानता कुछ भी नहीं है। ऐब्बे ह्यू नामक रोमन कैथेलिक पादरी ने तिब्बत में जो दृश्य देखा उससे वह बहुत ही आश्चर्य में हुआ, उसने लिखा है कि "हमारे और बौद्धों के बीच इतनी समानताएँ हैं—पोप के जैसा, दण्ड, टोपी, ढीला चोगा और सेली जिनको बड़े लामा यात्रा करते या विदा होते समय, अथवा मन्दिर के बाहर किसी धार्मिक कृत्य में पहनते हैं, प्रार्थना करते समय भजन गाने वालों का दो पंक्तियों में खड़ा होना, भजन-गान, भूत निकालने को झाड़ फूंक, पाँच शृंखलाओं में लटके हुये दीपक जो स्वयं बन्द हो जाते और स्वयम् खुल जाते हैं, लामाओं का अपने अनुयायियों के सिर पर सीधा हाथ रख कर उन्हें आशीर्वाद देना; सिर पर लपेटने का फूलों का हार, साधुओं का विवाह न करना, व्रत के दिनों में सांसारिक कार्यों से उपरामता, सन्त-सेवा, उपवास, जलूस; मन्त्र जाप, पवित्र जल।" मिस्टर आर्थर लिली (Mr. Arthur Lilie) जिनकी पुस्तक से दत्त महाशय ने उपर्युक्त वाक्य उद्धृत किये हैं—लिखते हैं कि 'योग्य पादरी अब्बे ने समानताओं की सूची को किसी प्रकार समाप्त नहीं किया है किन्तु उसमें इन बातों को भी समावेशित कर सकते थे—अपराध स्वीकार करना, सिर मुण्डन करना, चिन्ह वा प्रतीक—पूजा, पूजा स्थानों वा समाधि स्थानों के सामने फूल, बत्ती और प्रतिमाओं का उपयोग; क्रूस वा स्वस्तिक का चिन्ह, अद्वैत में द्वैत विश्वास, देवी की पूजा, धार्मिक ग्रन्थों का ऐसी भाषा में उपयोग जिसे पूजा करने वालों की बहुत संख्या न समझ सके;

---

* बौद्ध मन्दिरों में जहाँ बुद्धदेव की वा अन्य किसी महात्मा की अस्थि वा अन्य कोई चिह्न स्थापित किया जाता है उसको 'दागोपा' वा 'डागोबा' कहते हैं। यह शब्द संस्कृत धातु गर्भ से बना है।

बुद्ध तथा अन्य सन्तों की मूर्त्तियों पर मुकुट और मुख के चारों ओर मण्डल, देव दूतों के पंख, तप, पाप कुण्ड, मोर छत्र, पोप बिशप आदि अनेक दर्जों के पादरी, ईसाई गिरजों की विविध प्रकार की रचना सम्बन्धी समानताएँ।" इस सूची में मिस्टर बालफुर साहब Mr. Balfour अपनी पुस्तक Cyclopædia of India में इतनी बातें और बढ़ाते हैं—नामांकन, औषध, चमकते हुये केश। और मिस्टर टामसन साहब Thomson अपने Illustration of Chem., Vol II, p 19 में इन बातों को और जोड़ते हैं—बपतिस्मा, त्यौहार और मृतकों की आत्मा के लिये पिण्ड दान।*

बपतिस्मा जो ऊपर की सूची में आ चुका है, बौद्ध और ईसाई दोनों धर्मों में समान है। वस्तुतः यह पहले बौद्धों ही का 'अभिषेक' नामक संस्कार था और ऐसा प्रतीत होता है कि 'बपतिस्मा देनेवाले' यूहन्ना ने पैलस्टाइन के बौद्ध या एस्सेनेस लोगों से इसको प्राप्त किया था। जब हजरत ईसा का 'बपतिस्मा' देने वाले, यूहन्ना से मेल हुआ तो उन्हों ने इस कृत्य को उनसे प्राप्त कर लिया और तभी से यह ईसाईमत का प्रधान संस्कार बन गया। दीक्षा (बपतिस्मा) लेते समय जिस भांति एक ईसाई को पिता, पुत्र और पवित्रात्मा पर विश्वास लाना होता है, इसी प्रकार अभिषेक समय बौद्ध को 'बुद्ध, धर्म और संघ' इन तीनों को स्वीकार करना होता है।

डा० [illegible] लिखते हैं कि इतनी समानता इसलिए है कि ईसाई-धर्म के प्रारम्भिक प्रचारकों ने इन सिद्धान्त और रीति [illegible] को [illegible] इन्होंने अपने इस सिद्धान्त [illegible] कि बौद्ध लोगों ने अपने धार्मिक संस्कार और कृत्यों के ग्रहण करने में ईसाई गिरजों का अनुकरण किया है। हम अपनी अगली पुस्तक में यह सिद्ध करेंगे कि बौद्ध लोग ईसा के जन्म के पूर्व ही [illegible]

* Buddhism and Christianity, p [illegible], Cyclopaedia of India vol II, p 375.

विशाल मन्दिरों का निर्माण कर चुके थे; पटना के निकट नालन्द स्थान पर एक बहुत बड़ा बौद्ध भिक्षुकों का विहार, धन सम्पन्न प्रचारक समूह और विद्वत्पूर्ण विश्वविद्यालय उस समय उपस्थित थे जब योरोप मे इस प्रकार की बातों का कहीं प्रादुर्भाव तक न हुआ था। बौद्धधर्म की भारत मे अवनति होते हुए उसकी उच्च रीति, नीति और संस्थाओं का तिब्बत, चीन एवम् दूसरे देशों के निवासियों ने नालन्द तथा अन्य स्थानों से उस समय अनुकरण कर लिया था जब योरोप असभ्य जातियों के आक्रमणों से उभरने भी न पाया था। अपनी जागीरदारी सभ्यता वा धार्मिक व्यवस्था और रीति नीतियों को स्थिर भी न कर सका था। विद्वान् ग्रंथकर्त्ता इतने कथन के पश्चात् इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि "जहाँ तक दोनों मतों के मध्य समानता स्थिर होती है वहाँ तक सम्पूर्ण धर्म सम्बन्धी शासन और धार्मिक संस्थाओं की नक़ल पश्चिम ने पूर्व से की है न कि पूर्व ने पश्चिम से"।*

महात्मा बुद्ध और हज़रत ईसा की जीवन-सम्बंधी घटनाओं में समानता।

यह कुछ कम आश्चार्य की बात नहीं हैं कि जो विचित्र समानता हमने बौद्धधर्म और ईसाईमत के मध्य दिखाई हैं। वह इन दोनों धर्मों के प्रवर्त्तकों के जीवनचरित्रों मे भी मिलती हैं। गौतमबुद्ध और ईसा-मसीह दोनों का जन्म, विलक्षण वा असाधारण रीति से होना कहा गया है। दोनों के जन्म-समय अद्भुत शकुन हुये थे तथा एक नक्षत्र विशेष का उदय हुआ था। गौतमबुद्ध के जन्म से जिस नक्षत्र का सम्बन्ध था वह सुप्रसिद्ध 'पुष्प नक्षत्र' है।

गौतम की जीवनी मे लिखा है कि जब वे उत्पन्न हुये तो उनके दर्शन करने को असित नामक एक ऋषि महाराज शुद्धोदन के समीप आये। ऐसे ही इंजील में लिखा है कि "राजा हैरद के समय में यहूदिया (देश)

* Ancient India Vol. II, pp 835—6

के बेथलेहम (नगर) में जब ईसा का जन्म [illegible] तो [illegible] पूर्व से बुद्धिमान पुरुष यह कहते हुये आये कि यहूदियों का जो राजा [illegible] है वह कहाँ है ? हमने उसका नक्षत्र पूर्व में [illegible] है [illegible] पूजा के लिये आये हैं।" (मत्ती, अ० २ आ० १-२)

गौतम के 'बुद्ध' होने पूर्व मार (कामदेव शैतान) द्वारा [illegible] होने की गाथा उस प्रकार से बहुत समानता रखती है [illegible] ईसा को शैतान द्वारा फुसलाये जाने का वर्णन है, [illegible] और ईसा दोनों के बारह-बारह शिष्य वर्णन किये गये हैं। दोनों [illegible] का विश्वव्यापी और मङ्गलमय प्रेम का [illegible] दोनों [illegible] के भाव को छोड़ कर मनुष्यमात्र को समान [illegible] सत्य का उपदेश किया। ये [illegible] करती हैं कि ईसाइयत की [illegible] शैली विचारों के समान अधिकांश में बौद्धधर्म से [illegible] है।

६—सारांश—

हमने यह सिद्ध किया है कि ईसा के [illegible] में बौद्धधर्म प्रचार था [illegible] Baptist द्वारा स्वयम् [illegible] ईसा [illegible] हमने यह बात भी सिद्ध की है कि ईसाई और [illegible] कृत्य, मन्दिर-निर्माण [illegible] आदि विषयों [illegible] संस्थापकों की जीवन [illegible] घटनाओं [illegible] मौजूद हैं। [illegible] रविंसन (Mr. Rhys Davids) [illegible] आश्चर्य है की इन घटनाओं [illegible] Miracle [illegible] —Hibbert Lectures, 18— p. 1— [illegible] मौजूद हैं [illegible]

• [illegible]

ईसाईमत बौद्धधर्म का ऋणी है। प्रो० मोक्षमूलर जैसे ईसाई ग्रन्थकार भी यह बात स्वीकार करने को बाध्य हुये हैं। जब सिद्ध करने के लिये प्रमाण-पर-प्रमाण दिये जाते हैं कि ईसाईमत की सचाइयां उससे पूर्ववर्त्ती धर्मों में मौजूद थीं तो प्रोफ़ेसर साहब लिखते हैं कि "सब सचाइयां ईसाई मत से ही क्यों ली जायँ? ईसाईमत भी अन्य धर्मों से क्यों न ले?"* प्रोफ़ेसर मोक्ष मूलर ने "Chips from a German Workshop" नामक अपनी पुस्तक मे,—जिससे हम पूर्व भी एक वाक्य उद्धृत कर आये हैं-एक स्थल पर स्वीकार किया है कि "संसार के प्रारम्भ से ऐसा कोई धर्म ही नहीं हुआ जो सर्वथा मौलिक वा नवीन कहा जा सके। यदि हम इसे एक बार स्पष्ट रूप से समझलें तो सन्त औगस्टाइन के नीचे लिखे शब्द जिन्हों ने बहुत से मित्रों को चकित कर दिया सर्वथा विस्पष्ट और बोधगम्य हो जाते हैं। जो अब ईसाईधर्म कहा जाता है वह प्राचीन लोगों में भी विद्यमान था और वह मनुष्य जाति के आरम्भ काल से हज़रत ईसा के शरीर धारण करने तक बराबर रहा। ईसा के जन्म के समय से उस पूर्व प्रचलित सद्धर्म का नाम ईसाई मत पड़ा"। (August Rep. 1, 13) इस विचार से ईसा के वे शब्द भी जो उन्हों ने कोपर नाम के सेना-धिपति से कहे और जिनसे यहूदी चकित हो गये थे, अपने वास्तविक अर्थ को ग्रहण कर लेते हैं। (वे शब्द ये हैं)—"पूर्व और पश्चिम से बहुत से मनुष्य आवेंगे और स्वर्ग साम्राज्य मे अब्राहम, इसराईल, व याकूब के साथ बैठेंगे।

यह स्वीकृति स्पष्ट है और सिद्ध करती है कि पाश्चात्य लोग पूर्व के लोगों के उपकारों को क्रमशः कृतज्ञता पूर्वक मानते जाते हैं। श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त कहते हैं कि बनसेन (Bunsen) सीडिल (Seydil) और लिली (Lillie) जैसे कुछ ग्रन्थकार तो ऐसा मानते हैं कि ईसाईमत सीधा बौद्धधर्म से निकला है, परन्तु जैसा कि विद्वान् ग्रन्थकार (श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त) का विचार है—यह सम्मति सत्य की सीमा से

*Gifford Lacturs, pp·10-11

बढ़ जाती है। ईसाईमत के ज्ञान-ज्योति सम्बन्धी सिद्धान्त का बौद्ध-धर्म से बहुत कम सम्बन्ध है और उनका विकास स्वतन्त्र हुआ है। परन्तु, इस बात का खण्डन नहीं हो सकता कि ईसाईमत के [illegible] सिद्धान्त जिनके कारण वह यहूदीमत से [illegible] है, बौद्धधर्म से ग्रहण किये गये हैं। अथवा हम [illegible] सकते हैं कि "प्राचीन धर्मों पर ईसाईमत की [illegible] सम्बन्धी उत्कृष्टता निस्सन्देह एक मात्र बौद्धधर्म पर [illegible] है जिसकी शिक्षा ईसा के जन्म काल के सहस्र [illegible] दे रहे थे।"

हम इस अध्याय को जर्मनी देश के प्रसिद्ध [illegible] [illegible]lham के विचार प्रकट करके समाप्त करते हैं—

"जैसे कोई बेल सहारे के लिये किसी [illegible] चढ़ती है और हर प्रकार उसके लिये [illegible] परन्तु साथ ही उसको जीवन और [illegible] आँखों को प्यारा लगने लगता है, [illegible] विज्ञान से निकला यहूदी सम्बन्धी विदेशी [illegible] वृक्ष का सबसे [illegible] परन्तु [illegible] परिवर्तन होकर वह जीवन और [illegible] में वहीं कुछ नवीन होता है, परन्तु [illegible]।

---

*Ancient India Vol. II p. 10

† देखो S[illegible]

तृतीय अध्याय।



बौद्धधर्म का आधार वैदिकधर्म है।

१—महात्मा बुद्ध की शिक्षा का उद्देश्य किसी नवीन धर्म की स्थापना करना नहीं था।



पिछले अध्याय में हमने ईसाईमत के निकास का पता लगाया है। हमने यह बात सिद्ध की है कि उसके धार्मिक सिद्धान्त यहूदीमत पर और सदाचारिक उपदेश बौद्धधर्म पर निर्भर हैं। अन्त के दो अध्यायों में इस बात का उल्लेख किया जायगा कि ज़रदुश्ती मत के द्वारा यहूदी-धर्म की उत्पत्ति वेद से है। इस अध्याय में ये बात सिद्ध की जायगी कि बौद्धधर्म या सदाचार सम्बन्धी उन उपदेशों का संग्रह—जिनका महात्मा बुद्ध ने प्रचार किया और जो ईसाईमत के अभ्युत्थान मे बहुत कुछ सहायक हुये—सीधा वेदों से निकला है। यह बात कदाचित उन वेदानुयायियों को आश्चर्य का कारण होगी जो बौद्धधर्म को वैदिकधर्म का विरोधी मानते हैं। यह निश्चित है कि बुद्धदेव ने कभी नवीनधर्म की स्थापना का विचार तक नहीं किया। श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त जो महात्मा बुद्ध की प्रशंसा करने में किसी से कम नहीं हैं स्वीकार करते हैं कि बुद्ध भगवान ने कोई नवीन आविष्कार या नई ज्ञानोपलब्धि नहीं की थी*। वे फिर लिखते हैं कि "यह कल्पना करना एक ऐतिहासिक भूल होगी कि बुद्ध भगवान ने जान बूझ कर किसी धर्म विशेष का प्रवर्त्तक या आचार्य्य बनना चाहा। इसके विरुद्ध उनका तो अन्त समय तक यह विश्वास रहा कि वे उस प्राचीन पवित्र धर्म के सुन्दर स्वरूप का प्रकाश कर रहे हैं जो हिन्दू ब्राह्मण श्रमण और अन्य लोगों में प्रचलित

---

* Ancient India Vol II p. 206.

था, परन्तु पीछे से बिगड़ गया था। यह बात यथार्थ है कि [illegible] ऐसे परिव्राजक, साधु-संन्यासी उपस्थित थे जो संसार को त्याग कर और वेदोक्त यज्ञादि न करते हुये केवल ध्यान से अपना [illegible] करते थे। हिन्दूधर्मशास्त्रों में ऐसे साधुओं की 'भिक्षु' संज्ञा थी और साधारणतया उन्हें 'श्रमण' कहते थे। उस काल की अनेक [illegible]स्थाओं में से गौतमबुद्ध ने केवल एक [illegible] की स्थापना की थी, जो औरों से पहचान के लिये "शाक्यपुत्रीय श्रमण" के नाम से पुकारी जाती थी। बुद्ध ने उनको संसारत्याग, [illegible], पवित्र [illegible] विचार आदि उन्हीं बातों की शिक्षा दी जिनका उस समय के [illegible] श्रमण लोग उपदेश और अनुष्ठान करते थे १।"

२—बौद्धधर्म के एक पृथक् धर्म बन जाने का कारण—

अब यह प्रश्न हो सकता है कि महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं ने [illegible] अथवा पृथक् धर्म का रूप क्यों धारण कर लिया? इस प्रश्न का [illegible] देने के लिए हमें उस समय के वैदिकधर्म की [illegible] करने की आवश्यकता है जब बुद्ध भगवान विद्यमान थे और [illegible] शिक्षाओं का प्रचार कर रहे थे।

बुद्ध के प्रादुर्भाव के पहले वैदिकधर्म के इतिहास में [illegible] का समय था। वेद और उपनिषदों का पवित्र [illegible] होकर निरर्थक कृत्य और हिंसात्मक "यज्ञादि" का [illegible] चुका था। वैदिक वर्ण [illegible] (जो प्रारम्भ में गुण कर्मानुसार थी) बिगड़ कर वंश परम्परागत जातिभेद में परिवर्तित हो गई थी। [illegible] यह परिणाम हुआ कि ब्राह्मण लोगों ने [illegible] मान कर वेदाध्ययन तथा सत्कर्मों को [illegible] उनके पूर्वजों की संचित प्रतिष्ठा को [illegible]। [illegible] धार्मिक [illegible] संन्यासी लोग भी धार्मिक [illegible], [illegible]

१ [illegible] Vol. II, p. 181 [illegible]

आदि बातें छोड़कर तपस्या का केवल बाहरी आडम्बर दिखलाने को रखते थे। साधारण लोग भी वैसे सीधे, सच्चे, पवित्र और सद्गुण सम्पन्न न रहे जैसे कि वैदिक काल में थे। वे लकीर के फ़क़ीर और विलासप्रियता के चेले बन गये। प्राचीन आर्यों के सात्विक भोजन का स्थान आमिषाहार ने छीन लिया। उसे शास्त्रोक्त सिद्ध करने के अभि-प्राय से यज्ञों मे पशुओं का वध किया जाता था और उसके मांस से आहुति दी जाती थी।

बुद्ध के प्रादुर्भाव के समय वैदिकधर्म या यों कहिये कि आर्यों की सामाजिक स्थिति इस प्रकार की हो गई थी। बुद्धदेव के हृदय पर पशुबलिदान और जातिभेद इन दो बुराइयों का बड़ा प्रभाव पड़ा। उनका कोमल और प्रेम पूर्ण हृदय धर्म के नाम पर इतने निरपराध पशुओं के रक्त प्रवाह को न सह सका। उनका पवित्र आत्मा इस निकृष्ट और अन्याय पूर्ण जाति भेद के विरुद्ध संग्राम करने को उद्यत हो गया। और इसमें उन्हों ने मनुष्यमात्र के लिये सच्चा प्रेम और उनके आधार के लिये विशेष उत्साह दिखलाया। वस्तुतः यह बुराई इतनी अधिक हो गई थी कि बुद्धभगवान् के पूर्ववर्त्ती अनेक ग्रन्थकारों ने भी उसे बुरा कहा था। सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक सब बातों में इस जातिभेद की व्यापकता हो गई थी। यहां तक कि देश के क़ानून पर भी उसका प्रभाव पड़ चुका। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के लिये पृथक्-पृथक् क़ानून बन गये थे। ब्राह्मणों के ऊपर अनुचित दया और शूद्रों के साथ अनुचित कठोरता का व्यवहार किया जाता था, यह बातें बहुत दिनों तक नहीं ठहर सकती थीं। शूद्र कितने ही धार्मिक और गुणवान् क्यों न हों परन्तु न तो उन्हें धार्मिक शिक्षा देने का ही कहीं प्रबन्ध था और न उनकी समाज में ही कुछ प्रतिष्ठा थी। वे लोग इन बेड़ियों को तोड़ फेंकने के अवसर की ताक में बैठे थे। वे उस निर्दय प्रथा के पंजे में फँसे हुये थे जिसने उन्हें उच्च सोसाइटी के संसर्ग से बुरी तरह बहिष्कृत कर रक्खा था, उनकी

लालसा थी कि इस स्थिति में परिवर्तन हो। द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों में भी ऐसे अनेक उदाशय उदार प्रकृति पुरुष थे जो उनकी इस लालसा से सहानुभूति रखते थे। अतएव 'क्रान्ति' का समय आ गया था और इस विचार के लिये असाधारण दूरदर्शिता की आवश्यकता न थी कि समय आवेगा जब लोग इस हानिकर प्रथा के विरुद्ध युद्ध मचा कर अपनी बेड़ियों को तोड़ डालेंगे। वह अवसर आ गया। राजकुलोत्पन्न एक क्षत्रिय ने घोषणा की, कि समाज में मनुष्य की स्थिति जन्म से नहीं प्रत्युत गुणों से होती है। असंख्य मनुष्य उसके चारों ओर एकत्रित हो गये। ऐसी दशा में हम सहज ही में इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि अत्याचार के भार से दबे हुये शूद्र लोग किस उत्साह से उसकी बातें सुनते होंगे। बहुत से द्विजन्मे आर्य लोग भी उसके पवित्र धार्मिक उद्देश्य से सहमत हो गये और बौद्धधर्म देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल गया।

महात्मा बुद्ध की सफलता तथा बिना इच्छा के भी उनके एक नवीन धर्म का प्रवर्तक बन जाने का ठीक कारण ऊपर कहा गया है। समाज संशोधक अन्य महापुरुषों के समान बुद्ध भी बहुत अंश तक अपने समय के सुधारक थे। अविवेक पूर्ण और निर्दय पशु वध तथा कृत्रिम और अपवित्र जातिभेद का साहस पूर्वक खंडन करने से बुद्धदेव ने ऐसे तार को खींचा जिससे उनके समकालीनों के हृदय उनकी ओर आकर्षित हो गये। यदि उनका जन्म ऐसे समय में हुआ होता जब ये बुराइयां न होतीं तो उनका बहुत ही कम प्रभाव पड़ता और सम्भव तो यह है कि उन्हें अपने सुधार सम्बन्धी कामों के लिये अवसर ही न मिलता। परन्तु जिन दिनों उनका जन्म हुआ उन दिनों उन्होंने भारत में बड़ी संख्या लोगों को अपनी ओर खींच लिया, और इस प्रकार धीरे-धीरे वे एक नवीन धर्म के संस्थापक समझे जाने लगे।

४—बौद्धधर्म का विनाशक अथवा निषेधात्मक अङ्ग।

महात्मा बुद्ध की शिक्षा के निषेधात्मक भाग के सम्बन्ध में वेद—

इतना ही कहने की आवश्यकता है। उन्होंने विशेषतः दो अत्याचारों पर प्रबल रूप से आक्रमण किया। दत्त महाशय लिखते हैं कि—"गौतम अविचार पूर्वक खण्डन करने वाले न थे और न सब प्राचीन प्रचलित प्रथाओं के अचेत और कट्टर विरोधी ही थे। उन्होंने उस समय तक किसी प्रथा या विश्वास के विरुद्ध हाथ नहीं उठाया जब तक कि उस को अनुपयोगी अथवा प्राचीन धर्म में पीछे का मिलाव न समझ लिया हो। उन्होंने जाति पाँति का विरोध इस कारण किया कि वे उसको हानिकारक और प्राचीन ब्राह्मण धर्म के पश्चात् का बिगड़ा हुआ रूपान्तर समझते थे। उन्हों ने वैदिक [यज्ञादि] कृत्यों की निरर्थकता इसलिये प्रकट की कि उस समय उनकी विधि बहुत ही मूर्खता पूर्ण निरर्थक निकृष्ट रूप में थी और उनमें अनावश्यक निर्दयता पूर्वक पशुओं के प्राणाहरण किये जाते थे *।

यह प्रश्न हो सकता है कि क्या महात्माबुद्ध ईश्वर का अस्तित्व अथवा वेदों को ईश्वरी ज्ञान या प्रामाणिक पुस्तक मानते थे। ईश्वर विश्वास के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वे नास्तिक नहीं थे, शायद अज्ञेयवादी Agnostic थे। ईश्वर या ईश्वरीय ज्ञान का न मानना बौद्धधर्म का कोई आवश्यक सिद्धान्त नहीं है। ऐसा ज्ञात होता है कि उन्होंने आत्मसुधार और आत्म संयम आदि के उपदेश करने पर ही सन्तोष किया और सृष्टि सम्बन्धी ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर सोचने की चेष्टा ही नहीं की कि "क्या यह संसार अनादि और अनन्त है ? यदि नहीं तो उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई" ? कदाचित् उनका यह विचार हो कि इन प्रश्नों के उत्तर कदापि सन्तोष जनक नहीं मिल सकते। उनके शिष्यों ने इस विषय में जानने के लिये अनेक बार उनसे आग्रह पूर्वक ‡ जिज्ञासा की परन्तु उन्होंने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया।

---

* (Ancient India Vol. II.)

‡ उदाहरणार्थः—एक समय मलयूक्य पुत्त नामक किसी व्यक्ति ने महात्मा गौतम से यह प्रश्न किया, परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि हे मलयूक्य पुत्त तुम आओ और मेरे शिष्य बन जाओ, मैं तुमको इस बात की शिक्षा दूंगा कि संसार नित्य

निश्चय ही बौद्ध ग्रन्थों में ऐसे अनेक स्थल हैं जिनसे [illegible] है कि उन्होंने अपने शिष्यों को इस प्रकार की जिज्ञासा और [illegible] के लिये उत्साह ही नहीं दिया।

सब्बासवसुत्त में ऐसे विषयों पर विचार करने वालों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"वह मूर्खता से ऐसे विचार करता है मैं भूतकालों में था या नहीं? मैं भूतकाल में क्या था? मैं भविष्यत्काल में होऊँगा या नहीं? भविष्यत्काल में मेरा क्या स्वरूप होगा? या वर्तमान के लिये भी [illegible] ऐसे विचार करता है मेरा अस्तित्व वास्तव में है या नहीं? [illegible] यदि मेरा अस्तित्व है तो कहाँ से आया और कहाँ जायगा?"*

उनके विचार से भलाई करना ही धर्म था, [illegible] कि [illegible] धर्म के कर्म-काण्ड सम्बन्धी भाग की ओर भी दृष्टि डाली, और [illegible] काण्ड तथा आध्यात्मिक भाग की ओर से सर्वथा [illegible] [illegible] बुद्धधर्म में यह बड़ी भारी निर्बलता थी। इस प्रकार के [illegible] ही हैं और उनके उत्तर किसी न किसी रूप में देने ही चाहिये। [illegible] इन बातों को टालना चाहता था उनकी [illegible] आत्मा की भूख को नहीं बुझा सकता। परन्तु [illegible] इस त्रुटि की यह कह कर पूर्ति करदी कि संसार [illegible] ही अनादि काल से चला आता है, [illegible] आवश्यकता नहीं। इस प्रकार उन्होंने अपने धर्म को [illegible] बना दिया। परन्तु महात्मा बुद्ध [illegible] को नित्य ही कहते थे और न अनित्य। यद्यपि [illegible] वाही था परन्तु [illegible]

है या नहीं।" [illegible]

जो बोले कि [illegible]

निकाय [illegible]

* देखो [illegible] निकाय, [illegible]

मत हो गया। जैसा कि हम पूर्व कह चुके हैं कि उनकी सदाचारिक शिक्षा कैसी ही उत्तम क्यों न हो परन्तु धर्म की दृष्टि से वह एक बहुत बड़ा दूषण था। इस दोष के कारण ही अन्ततः भारतवर्ष में उसके भाग्य का अन्त हो गया। बौद्धधर्म प्रारम्भ में अत्याचार पूर्ण जाति-भेद, और निर्दय पशुवध के विपरीत पवित्र के विपरीत पवित्र विरोध करने तथा सदाचार और भलाई का सर्वसाधारण को उपदेश देने के कारण ही इस देश में फैल गया था। परन्तु नास्तिक मत बन जाने के कारण वह इस देश से बहिर्गत कर दिया गया।

ईश्वर की सत्ता और वेदों के ईश्वरकृत होने के विषय पर महात्मा बुद्ध के विचार तेविज्जसुत्त से जाने जाते हैं, जिसके सम्बन्ध मे महाशय राईसडेविड्स् Rhys Davids अपने अंग्रेज़ी अनुवाद की भूमिका मे इस प्रकार लिखते हैं—"इस सुत का नाम तेविज्ज सुत्त केवल इसलिये है कि इस मे गौतम का वर्णन तेविज्ज उपनाम से किया गया है। तेविज्ज का अर्थ है वेदों का ज्ञाता, और यह पाली शब्द त्रैविद्य या त्रयीविज्ञ शब्द का अपभ्रंश है।

इस सुत का आरम्भ दो ब्राह्मण युवक वसिष्ठ और भारद्वाज के विवाद से होता है, विषय यह है कि ब्रह्म प्राप्ति का सच्चा मार्ग क्या है। वे दोनों गौतम बुद्ध के पास जाते हैं, जो ये बतलाते हैं कि यदि कोई ब्राह्मण वेदों को अच्छी तरह पढ़ा हो परन्तु सदाचारी न हो तो वह ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता। इस सुत के कुछ वचन नीचे दिये जाते हैं—

२५—हे "वसिष्ठ ? इस प्रकार वे ब्राह्मण जो तीनों वेदों को पढ़कर भी उन गुणों का तिरस्कार करते हैं जिनसे मनुष्य ब्राह्मण बनता है और वे ऐसा पाठ करते हैं हम इन्द्र को पुकारते हैं, सोम को पुकारते हैं, वरुण कोपुकारते हैं, ईशान को पुकारते हैं, प्रजापति को पुकारते हैं, ब्रह्मा को पुकारते हैं, महिद्धि को पुकारते हैं, यम को पुकारते हैं, वसिष्ठ ये कभी सम्भव नहीं कि वे ब्राह्मण जो वेद पढ़े हुये हैं परन्तु उन गुणों का निर-

प्रकार करते हैं जिनसे मनुष्य वास्तव में [illegible] बनता है और उन [illegible] को धारण करते हैं जिनसे मनुष्य [illegible] बनता व [illegible] स्तुति और प्रार्थना के कारण मृत्यु के पश्चात् जब शरीर छूट जाता है [illegible] प्राप्त हो सके।

२७—"हे वसिष्ठ ! इसी प्रकार पाँच पदार्थ [illegible] जाते हैं जो आर्य्य संयम में बन्धन कहलाते हैं।

प्रश्न—वे पाँच पदार्थ क्या हैं ?

उत्तर—रूप जो आँख को प्रिय, सुन्दर और [illegible] परन्तु काम और मद को उत्पन्न करते हैं, इसी प्रकार [illegible] कान से सुने जाते हैं, इसी प्रकार [illegible] हैं, इसी प्रकार वे रस जिनको [illegible] अन्य पदार्थ जिनका शरीर [illegible] पदार्थों से काम की उत्पत्ति होती है [illegible] जाते हैं। और हे वसिष्ठ वे ब्राह्मण [illegible] पदार्थों के दास हैं जिनसे काम उत्पन्न होता है [illegible] हैं, पतित हो जाते हैं और [illegible] हैं और उनसे आनन्द पाते हैं।

२८—"हे वसिष्ठ ! [illegible] परन्तु उन गुणों का तिरस्कार [illegible] बनता है और उन गुणों को धारण करते [illegible] ब्राह्मण बनता है और [illegible] होता है, उनसे [illegible] शरीर छूटने पर [illegible]

इसके आगे [illegible] बुद्ध [illegible]
[illegible] दिखलाते हैं, और इस प्रकार उपदेश करते हैं—

३७—"अच्छा वसिष्ठ तुम यह मानते हो कि ऐसे ब्राह्मण जिनके हृदयों में क्रोध और द्वेष से रहित और संयम स्वरूप और पाप रहित है तो फिर क्या ऐसे ब्राह्मणों में और ब्रह्म में कोई समानता वा स्वरूपता हो सकती है ?"

हे गौतम नहीं हो सकती है।

३८—"अच्छा वसिष्ठ ! यह सम्भव नहीं कि ये ब्राह्मण जो वेद पढ़े होने पर भी अपने हृदय में क्रोध और द्वेष को धारण किये हैं जो पापी और असंयमी हैं मरने के पीछे शरीर छोड़ने पर उस ब्रह्म को प्राप्त कर सके जो क्रोध और द्वेष रहित पाप रहित और संयम स्वरूप हैं।"*

इसके पश्चात् एक सच्चे भिक्षु के शुद्ध जीवन का वर्णन करके महात्मा बुद्ध इस प्रकार उपदेश करते हैं—

८—अच्छा वसिष्ठ तुम मानते हो कि यह भिक्खु क्रोध और द्वेष से रहित है शुद्ध चित्त वाला और संयमी है, और ब्रह्म भी क्रोध और द्वेष से रहित, शुद्ध स्वरूप और संयम स्वरूप है तो हे वसिष्ठ यह हर प्रकार सम्भव है कि वह भिक्षु जो क्रोध और द्वेष से रहित है शुद्ध चित्तवाला और संयमी है मरने के पीछे शरीर छोड़ने पर ब्रह्म को प्राप्त कर सके जिसका वैसा ही स्वरूप है।" †

यह स्पष्ट है कि इस सुत्त में महात्मा बुद्ध ने वेदों की निन्दा नहीं की किन्तु अपने समय के उन ब्राह्मणों की निन्दा की है जो वेदों के जानने का अभिमान करते हुये ब्राह्मणों के गुणों से रहित थे महाशय राईसडैविड ने उनको तुलना बाइबिल के फ़ारसियों और लेखकों Pharisees and Scribes से की है।

यदि महात्मा बुद्ध ईश्वर के विषय में सन्दिग्ध थे तो ईश्वरीय ज्ञान पर भी विश्वास न कर सकते थे। वेदों से उनका विरोध नहीं था किन्तु

* देखो "बौद्ध सुत्त" Buddhist Suttas (Socred Books of the East series) पृ० १८०–१८४

† देखो "बौद्ध सुत्त" पृ० २०३

उदासीनता थी। इस उदासीनता का मूल तो यह कारण [illegible] से अनभिज्ञ थे और कुछ उस समय का यह विश्वास कि वेद [illegible] और जातिभेद की आज्ञा देते हैं। यदि वे वेद देख लेते, [illegible] प्रेमभाव और समानता के उपदेशों का वेदों के विद्यार्थी [illegible] करता के आधार पर प्रचार किया होता तो वे नये धर्म के संस्थापक [illegible] कर हमारे ही समय के स्वामी दयानन्द सरस्वती [illegible] बन जाते। यदि उस समय के लोग बुद्ध का [illegible] वेद की वास्तविक शिक्षा का अधिक ज्ञान [illegible] करने की अपेक्षा अपने ही धर्म का संशोधन करते, [illegible] होते हुए देश में नवीनमत स्थापित होने की दुर्घटना [illegible] इस प्रकार भारतवर्ष में फूट न फैलती [illegible] दोनों मतों के अनुयायियों के साथ भीषण युद्ध की [illegible]

बौद्ध धर्म का विधायक अथवा क्रियात्मक अङ्ग

महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं के क्रियात्मक [illegible] अधिक शुद्ध नहीं कहता। उन्होंने वैदिक धर्म [illegible] शिक्षा अर्थात् आत्मसुधार, आत्मसंयम, [illegible] के प्रति मैत्रीभाव, शुभ कर्म और आत्मिक पवित्रता [illegible] बुद्ध ने जिन चार प्रधान बातों का उपदेश दिया [illegible]

१—जीवन दुःखमय है, २—[illegible] है। ४—तृष्णा के नाश से दुःख की निवृत्ति होती है [illegible] नाश के नीचे लिखे [illegible] हैं:—

1 सत्य विश्वास

2 सत्य कल्पना

3 सत्य भाषण

4 सत्याचरण

5 सत्य जीविका साधन

६ सदुद्योग
७ सत्य संकल्प
और
८ सत्य विचार

(देखो महा वाग्य १ । ६ Quoted in Ancient India Vol. II P. 231) हमे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त बातों का वैदिक धर्म और दर्शन-शास्त्र सम्बन्धी विविध पुस्तकों मे अनेक बार वर्णन आया है। उदाहरणार्थ हम न्याय दर्शन का दूसरा सूत्र उद्धृत करते हैं :—

दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञानानामुत्तरोत्तरा पाये तदनन्तरापायादपर्गः । न्या; १ । २

दुःख जन्म, प्रवृत्ति, दोष और मिथ्या-ज्ञान इनमे से एक के नाश से उससे पूर्व वर्णित नष्ट हो जाता है और दुःख का निवारण ही मुक्ति है।

इसका भावार्थ यह है कि मिथ्या ज्ञान से दोष वा बुरी इच्छाएँ होती हैं उनसे जन्म की प्रवृत्ति होती है और जन्म ग्रहण करना पड़ता है और यह जन्म ही दुःखों की जड़ है। इसी क्रम मे एक की निवृत्ति होने से दूसरे की निवृत्ति होती चली जाती है। अर्थात् जन्म व जीवन के साथ दुःख का सम्बन्ध अवश्य है (बुद्ध का प्रथम उपदेश) दुःख और जन्म का कारण जीवन की इच्छा या तृष्णा है। (दूसरा उपदेश) इच्छा और जन्म प्रवृत्ति नष्ट होने पर दुःखों की निवृत्ति हो जाती है (तीसरा उपदेश) इच्छा और जन्म प्रवृत्ति का का नाश सत्य ज्ञान द्वारा होता है (चौथे उपदेश का भाग)

निम्न लिखित पाँच आज्ञाओं का पालन करना समस्त बौद्धों का, चाहे भिक्षु हों वा गृहस्थ, परम कर्तव्य है:—

१—किसी प्राणी की हिंसा न करे।

२—उस वस्तु को ग्रहण न करे जो उसे नहीं दी गयी।

३—मिथ्या भाषण न करें।

४—मादक द्रव्यों का सेवन न करें।

५—व्यभिचार न करें।

दत्त महाशय लिखते हैं कि 'ये निस्सन्देह वसिष्ठ [illegible] से लिये गये हैं।' *

परन्तु हम इन पांचों बातों का सम्बन्ध महर्षि [illegible] योग-सूत्र के पांच यमों से समझते हैं।

"अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यमाः।

योग अ० [illegible] । पा० २, सू० ३० ॥

जीवों की हिंसा न करना, असत्य भाषण न करना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, विषय भोग अथवा इन्द्रिय [illegible] में [illegible] न फंसना ये पांच यम हैं।

बौद्ध धर्म जिसका महात्मा बुद्ध ने प्रचार किया [illegible] का उपदेश है अन्य कुछ नहीं। बौद्ध धर्म के [illegible] वैदिक धर्म की पुस्तकों से [illegible] है। दत्त महाशय लिखते हैं कि बौद्ध धर्म के [illegible] पवित्र [illegible] हिन्दुओं से प्राप्त की और अपने पवित्र साहित्य में [illegible]। महात्मा गौतम द्वारा निर्धारित धर्मों के [illegible] जो धर्म सूत्रों से लिये हुए और स्वीकृत हैं।†

प्रोफेसर मोक्षमूलर महात्मा बुद्ध के [illegible] "ब्राह्मणों की और उनके सिद्धान्त की [illegible]

* यह [illegible] [illegible] [illegible] Ancient India Vol. II [illegible]

† Ancient India Vol. II [illegible]

अब हम इस बात को जान गए हैं कि गौतमबुद्ध के बहुत से उपदेश वास्तव में उपनिषदों के ही उपदेश थे" †

हमने यह सिद्ध किया कि महात्मा बुद्ध ने किसी नवीन धर्म या नवीन ज्ञान का प्रचार नहीं किया। उन्होंने कुछेक उन दूषणों का खण्डन किया जो सत्य वैदिक धर्म के अंग नहीं थे पर जो पीछे से उस में मिल गए थे। अन्य बातों में उन्होंने वैदिक धर्म के उपदेशों का प्रचार किया। अतएव बौद्ध धर्म जिससे हमारा अभिप्राय गौतम की उत्कृष्ट शिक्षा है, वैदिक धर्म पर अवलम्बित है।

चतुर्थ अध्याय

यहूदी मत का आधार ज़रदुश्ती मत है।

१—प्रारम्भिक।

अब हम यहूदी मत की ओर आते हैं यद्यपि उसके अनुयायियों की संख्या सम्प्रति बहुत ही थोड़ी है तथापि उससे संसार के जो प्रधान धर्म अर्थात् ईसाई और मुसलमान मत निकले हैं। चाहे अब यहूदी मत थोड़े से तिरस्कृत लोगों का धर्म रह गया है परन्तु तो भी इस से यह न समझना चाहिये कि उसके समर्थकों की संख्या कम है। मुसलमान लोग स्वीकार करते हैं और स्वयम् कुरान में भी इस विषय का स्पष्ट उल्लेख है कि उनके धर्म की नींव प्रायः एक मात्र यहूदी मत पर रक्खी गयी है, यद्यपि मुसलमान लोग यहूदियों पर अपने ग्रन्थों में कुछ मिलावट करने का दोष रखते हैं, यद्यपि उनका यह विश्वास है कि मुहम्मद साहब के सम्बन्ध की कुछ भविष्यत् वाणियों की जो जो उनमें मौजूद थीं,

---

† देखो मोक्समूलर कृत Three Lectures on Vedanta Philosophy P. 113.

निकाल दिया । तथापि यह [illegible] और पुरानी [illegible] के [illegible] ग्रन्थकारों को ईश्वर के भेजे हुये दूत (पैग़म्बर) मानते हैं । [illegible] की [illegible] का उद्योग [illegible] कि यहूदी पैग़म्बरों ने अपना ईश्वरीय ज्ञान पारसियों से प्राप्त किया । इसी [illegible] ईसाई लोग भी जिनकी धार्मिक शिक्षा [illegible] यहूदी मत पर अवलम्बित है यहूदी मत की ईश्वरीय [illegible] सिद्ध [illegible] की चिन्ता में मग्न होंगे । वर्तमान काल के प्राचीन [illegible] अन्वेषणाओं के लिये हम जिन का विशेषरूप से [illegible] अधिकतर ईसाई लोग हैं । इस लिये यदि यहूदी [illegible] विषय पर कुछ अधिक आलोचनात्मक [illegible]—[illegible] आश्चर्य की बात नहीं है । आज कल ईसाई विद्वान् यहूदी [illegible] जनश्रुतियों का ऋणी ठहराने के लिये तय्यार हैं ।

२—सम्बन्ध का मार्ग ।

हमारी सम्मति में इस बात को सिद्ध [illegible] के लिये कि, यहूदी [illegible] विशेषतः यहूदी मत पर अवलम्बित है, [illegible] दोनों मतों के साथ इसकी [illegible] और [illegible] जिनके कारण इस परिणाम पर पहुँचना [illegible] है [illegible] के विचार करने से पहुँचे । प्रो० [illegible] यदि [illegible] कि "इस प्रकार के विचारों की ओर [illegible] को दिखलाना आवश्यक है [illegible] के 'पैग़म्बर की किताब' में [illegible] इस से पहुँचना सम्भव हो सकता है ।"*

* [illegible]

ऐसा मार्ग सुलभता पूर्वक दिखलाया जा सकता है। डाक्टर स्पीगल ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि ज़रदुश्ती और इबराहीम † दोनों एक ही काल और एक ही स्थान में हुए। (बाइबिल के अनुसार ईसा से लगभग १९२० वर्ष पूर्व)। बाइबिल बतलाता है कि हज़रत इबराहीम हैरन के निवासी थे, और ज़िन्दावस्ता से ज्ञात होता है कि ज़रदुश्त का जन्म 'आर्या नां बीज' Aryanam Veiga अर्थात् (आर्यों की बीज) नामक स्थान में हुआ प्रोफ़ेसर मोक्षमूलर ही नहीं, प्रत्युत अनेक शब्द शास्त्र वेत्ताओं की भी सम्मति है कि 'आर्य्यानां बीज' 'ऑक्सस और जैक्सरटीज नदियों के मध्य फ़ारिस के पश्चिमीय भाग में होना चाहिये और उसका उक्त नाम पड़ने का कारण यह था कि वह आर्यों का निवास स्थान था जिससे आर्य्यावर्त्तीय और ईरानी दोनों आये डाक्टर स्पीगल का विचार है कि फ़ारसी ऐरन पुराने 'आर्यानां बीज' नाम का केवल संक्षिप्त रूप है।

स्वयम् प्रोफ़ेसर मोक्षमूलर ही दोनों मतों के बीच सम्बन्ध का दूसरा मार्ग बताते हैं। वे कहते हैं कि "डाक्टर स्पीगल अपने विश्वासानुसार इबराहीम और ज़रदुश्त के प्राचीन मिलने के स्थान को निश्चित करके यह युक्ति देते हैं कि जो विचार पैदायश की किताब और अवस्ता मे समान हैं उनका सम्बन्ध उसी प्राचीन काल से होना चाहिये जिसमे यहूदी और पारसियों के धर्माचार्य्य इबराहीम व ज़रदुश्त के मध्य परस्पर भेंट होने की सम्भावना थी।........यह प्रसिद्ध है कि लगभग एक ही समय और एक ही सिकन्दरिया ※ नामक स्थान पर जहाँ 'पुरानी धर्म पुस्तक' का यूनानी भाषा में अनुवाद हुआ था,—पास सन् ईस्वी से पूर्व तीसरी शताब्दि में सिकन्दरिया स्थान पर पैदायश

---

† यहूदियों के सबसे पहले पैगम्बर जिनका वर्णन तौरेत मे है। इबराहीम Ibraham थे।

※ मिश्रदेश Egypt की राजधानी सिकन्दरिया नगर है।

की शिक्षा और अवस्था के मानने वालों में [illegible] ऐतिहासिक प्रमाण है। यह उस विचार परिवर्तन का [illegible] है जिसका डाक्टर स्पीगल के मतानुसार इरान और [illegible] से भिन्न के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान पर होना [illegible] नहीं ‡।

यह एक नया प्रमाण इस बात का [illegible] है कि किसी समय में भी दोनों मतों के मध्य विचार परिवर्तन [illegible], परन्तु [illegible] तुच्छ सम्मति में इससे डाक्टर स्पीगल की उस [illegible] नहीं होता कि उस प्राचीन समय में भी विचार परिवर्तन [illegible] जरदुश्त और इबराहीम की [illegible] थी। [illegible] कठिन है कि प्रोफेसर साहब की सम्मति से '[illegible]' और 'अवस्था' के समान विचारों का समाधान [illegible] हो सकता है। क्योंकि प्रो० मोक्षमूलर की सम्मति के [illegible] तीसरी शताब्दि में [illegible] स्थान पर उन दोनों [illegible] पादसार किया गया था—स्पष्ट नहीं है। [illegible] का समर्थन कि इबराहीम और जरदुश्त समकालीन थे, [illegible] सम्बन्धी समानता से भी [illegible] होता है। [illegible] मूलर स्वीकार करते हैं कि "[illegible] डाक्टर स्पीगल [illegible] है कि जरदुश्त के [illegible] पारसी धर्माचार्यों के [illegible] हैं। वे [illegible] (ईश्वर) के [illegible] जरदुश्त से डाक्टर स्पीगल के [illegible] नहीं [illegible] •"

[illegible] इसकी [illegible] है कि डाक्टर [illegible] Haug) [illegible] 'अवस्था' [illegible]

‡ Chips, Vol. I, p p. [illegible]

• Chips vol I. p 15[illegible].

भाषा के कोषों में, जरदुश्त और इबराहीम पैग़म्बर को एक ही व्यक्ति बनाया गया है। † ”

यहूदीमत मे ज़रदुश्ती विचारों के प्रवाह का दूसरा मार्ग उस ऐतिहासिक घटना से जाना जाता है जो वैबिलन के बन्धन के नाम से प्रसिद्ध है। ईसा से ५८७ वर्ष पूर्व वैबिलन के सम्राट् नवृशद नजर ने पैलस्टाइन पर आक्रमण किया और यरुसलम को जीतकर बहुत से यहूदियों को अपनी राजधानी में ले गया। उसने उनका साहित्य विनष्ट कर उनको अपना बँधुआ बना लिया। इससे कोई सौ वर्ष के पश्चात् फ़ारसी सम्राट् खुसरो ने वैबिलन के साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर डाला, और कुछेक यहूदियों को यरसलम में इस अभिप्राय से जाने की आज्ञा देदी कि वे वहां जाकर इबरानी (यहूदी) साहित्य की पुनः स्थापना करें। यरुसलम वापिस आने पर सन् ईसवी से ४५० वर्ष पूर्व एजरा और नेहमिया ने 'पुराने धर्म पुस्तक' का सम्पादन और संकलन किया। जो पुरुष हज़रत मूसा को पंजनामे का कर्त्ता नहीं मानते, उनका मत है कि एजरा और नेहमिया ने इसी समय उसकी रचना की। इस प्रकार यहूदियों की परम प्राचीन पुस्तकें उस समय लिखी गई या नये सिरे से संकलित की गई जब वे लोग जरदुश्तियों के मध्य चिरकाल तक रह चुके थे।

मैडम ब्लैवट्स्की (Madame Blavatsky) इस विचार को केवल पुष्टि ही नहीं प्रत्युत इससे बढ़कर ऐसा मानती हैं कि हज़रत मूसा की समस्त कहानी कल्पित है और वैबिलन के राजा सरगन की कथा की नक़ल मात्र है। "एजरा ने सारे पंजनामे को नवीन रूप में ढाला। फ़रऊन की पुत्री नीलनदी और उसमे नागरमोथा की नाव में बालक के तैरते हुए पाये जाने की कथा आरम्भ में हज़रत मूसा ने न तो स्वयम बनाई और न

† Dr. Hdug's Essays on the sacred language, writing and religion of the Parsis, p. 16.

उनके लिये किसी और ने बनाई। [illegible] बैबिलन के [illegible] बैलों पर राजा [illegible] की [illegible] जो मूसा के [illegible] हुई [illegible] थी। अब तर्क दृष्टि से विचार करने पर [illegible] निस्सन्देह यही [illegible] कि [illegible] का [illegible] ने मूसा के सम्बन्ध में [illegible] किया है [illegible] सीखा था, और उन्होंने उस [illegible] यहूदी आचार्य (मूसा) के [illegible] कर दिया। [illegible] 'यात्रा की पुस्तक' * मूसा की रची [illegible] सामग्री से उसकी [illegible] रचना की थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि [illegible] दियों के पारसियों से अपने धार्मिक विचार [illegible] नहीं है। अब हम दोनों मतों के [illegible] सिद्धान्त [illegible] के लिये आगे बढ़ते हैं। [illegible] होता आया है कि सिद्धान्त सम्बन्धी [illegible] जिन के लिए पारसीमत [illegible] स्वीकार करते हैं। [illegible] इतना विरुद्ध नहीं है [illegible]

[illegible] पारसी और ईसाईमत के [illegible] हम ही [illegible] प्रसिद्ध [illegible] विश्व और उसके गुण, और [illegible] मौलिक से हैं, और [illegible] हाते आते हैं।"

---

* [illegible] की पुस्तकों में [illegible] है।

[illegible]

[illegible]

अब हम इन समान सिद्धान्तों की यथाक्रम विवेचना करेंगे।

ईश्वर विषयक विचार:—

डाक्टर हॉग साहब ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में इस बात स्वीकार किया है कि बाइबिल और ज़न्दावस्ता ईश्वर सम्बन्धी ब में प्रायः एक ही प्रकार की शिक्षा देते हैं। वे कहते हैं—स्पितामा ज़ का विचार अहुर मज़दा* को ईश्वर मानने के सम्बन्ध में पु अहदनामे की पुस्तकों में वर्णित ज़ोहोवा † ऐलोहिम (ईश्वर) विष विचारों से पूर्णरूपेण समता रखता है। वह अहुरमज़दा को आ भौतिक और आध्यात्मिक जीवन का उत्पादक तथा अखिल विश्व स्वामी बताते हैं, जिसके आधीन सारे प्राणी रहते हैं। वह प्रकाश स्व और प्रकाश का मूल स्थान है वह बुद्धि और ज्ञान स्वरूप है" ‡।

यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि समानता बाइबिल अ ज़न्दावस्ता में प्रयुक्त ईश्वर के नामों तक मे पाई जाती है। जन्दाव हरमज़द यष्ट में, अहुरमज़दा अपने २० नामों की गणना करता है पहला नाम 'अह्मि' (संस्कृत अस्मि) अर्थात 'मैं हूँ', और पिछ 'अह्मि यद् अह्मि' (संस्कृत अस्मि यद अस्मि) अर्थात् 'मैं हूँ जो मैं हूँ ये दोनों वाक्य बाइबिल में जेहोवा के भी नाम हैं और ईश्वर ने मू से कहा:—'मैं हूँ जो मैं हूँ' Ehyeh asher Ehyeh, और उस कहा कि उसी प्रकार तू इसराईल की सन्तान से कहेगा कि मुझ तुम् पास 'मैं हूँ' ने भेजा है §।" इन नामों में इतनी अधिक समानता कि उसे आकस्मिक नहीं कह सकते।

---

* जन्दावस्ता में ईश्वर का मुख्य नाम 'अहुरमज़दा' है जो वैदिक 'असुरमे का रूपान्तर है देखो अ० ५ अं० १।

† बाइबिल में ईश्वर का मुख्य नाम जेहोवा।

‡ Haugh's Essas p. 30.

§ यात्रा की पुस्तक ३। १४

डाक्टर स्पीगल की सम्मति है ([illegible] प्रोफेसर [illegible] [illegible] संदिग्ध बताते हैं) कि "[illegible] शब्द (जो [illegible] के [illegible] [illegible] नाम है) [illegible] या [illegible] शब्द ([illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] स्पीगल कहते हैं कि [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] धातु (संस्कृत [illegible] के [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] यही अर्थ है जो [illegible] के है अर्थात् 'पा [illegible] है।"

बालगंगाधर तिलक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ज्योतिष का समय" में [illegible] [illegible] शब्द [illegible] [illegible] [illegible] साहित्य से दिखलाया है। वे लिखते हैं—"[illegible] [illegible] [illegible] शब्द यही है जो कालिडयन भाषा में [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] लिखकर [illegible] और [illegible] शब्द [illegible] [illegible] [illegible] प्रोफेसर [illegible] ने उसकी व्युत्पत्ति [illegible] धातु से [illegible] [illegible] [illegible] ढंग से चलाया है। निघण्टु में यह शब्द [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] के अर्थ में (निघ० [illegible]) में [illegible] है और [illegible] [illegible] निघ० [illegible] निरुक्त [illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] ऋग्वेद में सोम के लिये (ऋ० [illegible] । [illegible] । [illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] में इन्द्र के लिये ([illegible] । [illegible] । [illegible]) [illegible] [illegible] प्रमाण देने की आवश्यकता [illegible] । [illegible] [illegible] ([illegible] [illegible]) में यह शब्द [illegible] में [illegible] है और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था"। (पृष्ठ [illegible])

तिलक [illegible] ने इस [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में वैदिक शब्द था, और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लिया है परन्तु वे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है और [illegible] [illegible] नहीं [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कालिडयन भाषा में यह शब्द [illegible] [illegible] [illegible]

---

† Chips Vol I. p. [illegible]

पारसी लोग अग्नि की बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं यह प्रसिद्ध बात है। वे दिन गये जब पारसियों पर अग्नि पूजक होने का लांछन लगाया जाता था। परन्तु यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि वे लोग अग्नि में ईश्वर व उसकी शक्ति का सर्वोच्च प्रादुर्भाव वा प्रकाश मानते हैं। यसन ३२०-१ का शीर्षक है कि "अग्नि अहुर-मज़्दा का चिन्ह है जो उसकी प्रज्वलित शिखा में प्रकट होता।" इस को अग्नि पूजा से तुलना करना न्याय नहीं है। यदि यह अग्नि पूजा है तो, जैसा ब्लैवटस्की ने ठीक लिखा है कि जो ईसाई ईश्वर को सजीव अग्नि बताता है और जो पवित्रात्मा के उतरते समय' अग्नि की जिह्वा' व मूसा की 'जलती हुई झाड़ियों' की बात कहता है वह भी वैसा ही अग्नि उपासक है जितना कि कोई अन्य जो ईसाई नहीं है। * पुराने अहदनामे में यह वर्णन किया गया है कि तेरा प्रभु ईश्वर क्षय करने वाली अग्नि है। † इस प्रकार ज़न्दा-वस्ता के अनुसार ही बाइबिल भी ईश्वर को अग्नि रूप मे वर्णन करता है। वस्तुतः पंजनामे में साधारणतया परमेश्वर अग्नि के बीच में प्रकट होता है। हम यात्रा की पुस्तक' का उदाहरण देते हैं। "ईश्वर ने हज़रत मूसा से कहा, देख मै तुझ तक घने बादलों में आता हूँ जिससे जब मैं तुझ से बोलूँ तो सब लोग सुनें और सदैव तेरा विश्वास करें।" मूसा ने लोगों की बातें ईश्वर से कहीं और "तीसरे दिन प्रातः-काल ऐसा हुआ कि मेघ गर्जने लगे और बिजली चमकने लगी और एक घना बादल पर्वत के ऊपर आ गया। नरसिंह के स्वर से अधिक तीव्र शब्द हुआ कि लश्कर के समस्त लोग काँपने लगे और सिनाई पर्वत धूम्राच्छादित हो गया क्यों—कि ईश्वर अग्निरूप में उसके ऊपर उतरा था और उसका धुआँ भट्टी के धुएँ के समान ऊँचा चढ़ा और सारा पर्वत वेग से हिलने लगा।'

* Secret doctrin Vol.I.p.121.
† Dintemiony अ० ४।२४' यात्रा की पुस्तक'१९-१- १९-१८.

और भी बाइबिल में लिखा है:—

"इसराईल के सन्तान की दृष्टि में पर्वत की चोटी पर ईश्वर के तेज का दृश्य विकराल अग्नि के समान था। इन वाक्यों को अपनी आँखों के सामने रखकर ऐसा कौन होगा जो बाइबिल के ... को ... के अहुर मज़्दा की नक़ल न कहे।

ईश्वर और शैतान, दो शक्तियों का विश्वास—

जरदुश्तियों का यह विश्वास, यहूदी ईसाई और मुसलमानों का एक आवश्यक सिद्धान्त बन गया है। प्रो० ... [illegible] ... इसे इस प्रकार संक्षेप में वर्णन करते हैं—"संसार ... है, वह अब है दो प्रकार का है। इसकी रचना ... [illegible] ... और ... परन्तु प्रतिस्पर्धी इन दो परस्पर विरोधी शक्तियों द्वारा ... संसार का इतिहास इन शक्तियों के विरोध का इतिहास है। ... ने अहुरमज़्दा के जगत् पर किस प्रकार आक्रमण किया और ... विनाश तथा अन्त में किस प्रकार वह ... [illegible]।"

यह वही विश्वास है जैसा ईसाई लोग अपने ईश्वर और शैतान के सम्बन्ध में रखते हैं। इस बात के प्रकट करने की आवश्यकता नहीं कि जिस प्रकार अहुरमज़्दा ... [illegible] ... है, उसी प्रकार अहुरमन्यु बाइबिल के शैतान ... है।

दोनों विचार एक ही हैं इस बात को ... [illegible] ... स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि ... [illegible] ... विषयक विचार, साधारण ईसाइयों के ... [illegible]

[illegible] २४ । १७

† Zend Avesta ... [illegible]

अंश में भी भेद नहीं रखते प्रतीत होते *।" वे आगे कहते हैं कि—"पारसियों के शैतान और नरक विषयक विचार ईसाई सिद्धांतों से सर्वांश में समानता रखते हैं। बाइबिल और ज़न्दावस्ता दोनों के मतानुसार शैतान हिंसक और असत्य का पिता है।"†

बाइबिल में शैतान सर्प के रूप में प्रकट होता है जिन्दा वस्ता में भी, 'अज़िद हक़' अर्थात् जलता हुआ साँप, कहा गया है। (फ़ारसी का अजदहा इसी शब्द से निकला ज्ञात होता है, जिसका अर्थ विकराल सर्प अथवा पंख युक्त सर्प है)।

अगले अध्याय में हम यह बात सिद्ध करने का यत्न करेंगे कि ज़न्दावस्ता का मत वेदों से निकला है। परन्तु इस स्थल पर हम यह दिखाना चाहते हैं कि संसार मे दो प्रतियोगिनी शक्तियों के विचार का पता चाहे वह प्रकट रूप से ज़रदुश्ती विचार प्रतीत होता हो, वेदों के एक सुन्दर अलङ्कार अर्थात् इन्द्र और वृत्रासुर के युद्ध से चलता है। यह अलंकार वैदिकसाहित्य में प्रसिद्ध है, और वेद के अनेक भागों की भाँति दो अर्थ रखता है,-एक बाह्य और दूसरा आभ्यान्तरिक अथवा जैसा कि यास्कमुनि रचित निरुक्त में समुचित रीति से वर्णन किया गया है। एक 'आधिदैविक' और दूसरा आध्यात्मिक'। आधिदैविक अर्थ की व्याख्या के अनुसार इन्द्र सूर्य है। वृत्र के अर्थ ढाँपने वाले के हैं, (वृ आच्छादने धातु से) और वह बादल का नाम है जो सूर्य्य को ढक लेता है। सूर्य्य अपने प्रदीप्त प्रकाश और सुखमयी ऊष्मा को इस पृथ्वी पर फैंकता है तथा समस्त जीवधारी और वनस्पतियों को जीवन देता है। वृत्र सूर्य को छिपा कर उसके प्रकाश और ऊष्मा को हमारे वास तक आने से रोकता है जिससे चाहे थोड़ी देर को ही सही—अन्धकार फैल जाता है। इस प्रकार संसार मे प्रकाश के मूल इन्द्र और अन्धकारकारी वृत्र के

---

* Hang,s Essays d-53.

I bed p. 309

मध्य निरन्तर युद्ध होता रहता है। जब वृत्र प्रबल हो जाता है तो सूर्य छिप जाता है और संसार अन्धकारमय हो जाता है। परन्तु [illegible] इन्द्र के विजयी होने पर वृत्र का नाश हो जाता है और वह [illegible] के रूप में पृथ्वी पर गिर पड़ता है। इन्द्र फिर अपने [illegible] होता है और अपने पूर्ण तेज से चमकने लग जाता है। [illegible] संहार करके उसकी आभा पाने से भी [illegible] है। [illegible] तिक रूप है जो इस अलंकार का वास्तविक [illegible] है।

आध्यात्मिक अर्थानुसार इन्द्र ईश्वर है, जो प्रकाश और [illegible] है, समस्त प्रकार के ज्ञान, धर्म इत्यादि और [illegible] है [illegible] या कि सब भलाई उसी से निकली है। [illegible] वृत्र [illegible] अर्थात् पाप और अन्धकार की शक्ति है। जिस प्रकार [illegible] प्रकाश और अन्धकार के मध्य निरन्तर युद्ध होता रहता है, [illegible] आत्मिक संसार में धर्म और अधर्म के बीच [illegible] रहता है। जिस प्रकार इस संसार को सूर्य प्रकाशित करता है [illegible] प्रकार का ईश्वर जो शुद्ध, पवित्र [illegible] ज्योति का [illegible] है, [illegible] बुद्धि व अन्तःकरण को प्रकाशित करता तथा [illegible] उत्पन्न करता है। परन्तु जैसे कभी सूर्य के [illegible] पर अन्धकार हो जाता है [illegible] बादलों का पर्दा लग जाता है, [illegible] जाता है। काम, क्रोध, लोभ, ईर्षा, द्वेष और अहंकार [illegible] वृत्र की सेना रूप है जो हमारे आत्मा को घेर [illegible] ईश्वरीय ज्योति को [illegible] के मध्य युद्ध [illegible] होता है। [illegible] जहाँ इन्द्र और वृत्र की सेनाएँ [illegible] आत्मा [illegible] हो जाता है, फिर [illegible] होता है कि [illegible]

सेना अर्थात् भलाई और धर्म के भाव आत्मा को त्याग जाते हैं क्योंकि उस समय वह उनके लिये उचित निवास स्थान नहीं रहता। आत्मा पाप की उन सेनाओं का आखेट बन जाता है जिन की आधीनता उसने शीघ्रता पूर्वक स्वीकार कर ली थी। इन्द्र का प्रकाश उस आत्मा को प्रकाशित नहीं करता। एक प्रकार का आत्मिक अन्धकार उत्पन्न हो जाता है, जिस में आत्मा को भलाई-बुराई का विवेक नहीं रहता और वह अपने आपको पाप व दुःख के गर्त में गिरा देता है। जब वह अपनी कुवासनाओं के फलों का आस्वादन कर चुकता है तब परमेश्वर की कल्याणकारिणी शक्ति उसका अधर्मावस्था से उद्धार करती है।

धर्म और अधर्म का यही युद्ध है जो संसार में सदैव होता रहता है। यही आत्मिक संग्राम है, जिसे हम अपने जीवन के पल-पल पर अनुभव करते रहते हैं। इसी के कारण संसार में धर्म पर चलना कठिन है। इसी का उपर्युक्त अलङ्कार में सुन्दरता पूर्वक चित्र खींचा गया है।

वृत्र के अनेक वेदोक्त नामों में से एक नाम "अहि" ❀ है जिस के अर्थ संस्कृत साहित्य मे सर्प † के भी हैं। यही नाम ज़न्दावास्ता में "अज़्हि" या 'अज़हिदहक' (संस्कृत-अहिदाहक) के रूप में प्रयुक्त होता है।

प्रोफ़ेसर मोक्षमूलर ने अपनी पुस्तक (Science of Ianguage) में 'अहि' शब्द और उससे मिलते हुए अन्य आर्य भाषाओं के शब्दों के विषय में इस प्रकार लिखा है:—

"परन्तु संस्कृत में अहि,शब्द का अर्थ साँप भी हैं ऐसे ही यूनानी भाषा में Fchis और लैटिन भाषा में Anguis...इनका धातु संस्कृत में अह या अंह है जिसके अर्थ दबाने या गला घोटने के हैं......लैटिन भाषा में इस धातु का रूप Ango, Anctum गला घोटने के अर्थ में है, उससे Anger संज्ञा रूप होता है परन्तु Angar शब्द के अर्थ

❀ उदाहरणार्थ देखो ऋग्वेद मं० १ सूत्र ३२ मन्त्र १, २; ३, ५, निघण्टु १–१० भी द्रष्टव्य है।

† देखो अमरकोश १।७।६

केवल गला घोटने या बांधने के अर्थ में ही नहीं [illegible]
हैं, और Anguish, anxiety का अर्थ भी है।"

[illegible] शब्द के इन दोनों अर्थ का सम्बन्ध दिखलाते हुए [illegible] मूलर इस प्रकार लिखते हैं।

"संस्कृत में यह शब्द पाप के अर्थ में आता है [illegible] पाप मनुष्य के मन के मन के सामने भिन्न-भिन्न रूपों में [illegible] इसके अनेक नाम हैं परन्तु ऐसा उपयुक्त कोई और नाम नहीं [illegible] अंह धातु से निकले हुए शब्द हैं।

अंह का अर्थ संस्कृत में पाप केवल इसलिये है क्योंकि [illegible] यौगिक अर्थ गला घोटना है और पाप का भाव [illegible] ही होता है जैसा कोई पातक किसी का गला घोटे [illegible] में Agas शब्द जो पाप का वाचक है [illegible] भाषा में इसी धातु से Agis शब्द [illegible] के शब्द Awe और Ugly शब्द का [illegible] निकले हैं और इसी प्रकार अंग्रेजी शब्द Anguish [illegible] gosse इटेलियन Angoscia जो लैटिन शब्द [illegible] अपभ्रंश है।"

वैदिक शब्द 'अंहि' के दो अर्थों में [illegible] परन्तु [illegible] पाप की शक्ति का [illegible] [illegible] और मुसलमानों को [illegible] [illegible] आक्षेप करते हैं:—

"[illegible]
है तो क्या [illegible]

का उल्लेख 'पैदायश की किताब' के तृतीय अध्याय में किया गया है वह पारसियों से लिया गया ? वेद और ज़न्दावस्ता किसी में भी सर्प ने ऐसा कपट युक्त और धूर्ततापूर्ण स्वरूप धारण नहीं किया जैसा कि 'पैदायश की किताब' में किया है *। यह आक्षेप ऐसा ही है जैसा कि यह कहना कि पिता और पुत्र बिलकुल एक से ही होने चाहियें अथवा असल और नक़ल में किसी प्रकार का भी भेद न होना चाहियें परन्तु आगे चलकर विद्वान् प्रोफेसर पूर्वोक्त युक्ति की युक्तता को स्वीकार करते हुये प्रतीत होते हैं। पुराने अहदनामे की पिछली पुस्तकों, जैसे इतिहास की पुस्तक मे जहाँ यह वर्णन है कि शैतान ने डैविड को इसराईल की हत्या करने के लिये उत्तेजित किया, (यह वही उत्तेजना है जिसका समुअल के अध्याय २४। २ मे ईश्वर के उस क्रोध से सम्बन्ध कहा गया है जो इसराईल और यहूदा को नाश करने के लिये था) और नये अहदनामे के उन समस्त स्थलों में जिनमे पाप की शक्ति को पुरुषवत् वर्णन किया है, हम पारसी विचार पारसी वाक्यों का प्रभाव मान सकते हैं, यद्यपि यहाँ भी सुदृढ़ प्रमाण मिलना किसी प्रकार सहज नहीं है।......रहा स्वर्ग मे सर्प सम्बन्धी विचार, सो यहूदीमत और ब्राह्मण दोनों मे उत्पन्न होना सम्भव है †।"

अन्य ईसाई लेखकों ने भी स्वीकार किया है कि इस सिद्धान्त को यहूदियों ने पारसियों से लिया। हम रेवरेन्ट हार्लीवकार Rev. E. T. Harley Walker M. A. के लेख में से उद्धृत करते हैं जो उन्होंने अप्रैल सन् १६१४ के Inter. Pretor पत्र मे "बाइबिल के मत पर पारसियों का प्रभाव" शीर्षक से दिया था—"यहूदी मत के पिछले समय मे पारसियों के द्वैत के चिन्ह और भी स्पष्ट पाये जाते हैं। जरदुश्त के अनुयायियों के मत में संसार का सारा इतिहास एक लगातार युद्ध है जो

* Chips Vol. I. p. 155.

†Chips Vol I. p. 155.

अहुरमज्द अर्थात् परमेश्वर और [illegible] [illegible] [illegible] अंगरामैन्यु के बीच, [illegible] सत्य और [illegible] के बीच, [illegible] और अंधकार के बीच, [illegible] है। [illegible] को [illegible] नहीं किया [illegible] प्रकट किया [illegible] से इसराइल का [illegible], [illegible] ईसाई के [illegible] है।

हम इस विषय पर [illegible] प्रसिद्ध [illegible] hame का भी प्रमाण देते हैं :—

"इससे [illegible] दो [illegible] प्रकार भी [illegible] अहोवा अहुरमज्दा का [illegible] है और [illegible] साथ-साथ [illegible] है। [illegible]"

तो क्या वैदिकधर्म में भी [illegible] और [illegible] दो शक्तियों का [illegible] है ? नहीं, [illegible] तीनों [illegible] है।

यह [illegible] [illegible] कोई [illegible] [illegible] अर्थात् धर्म [illegible] [illegible] का मूल [illegible] ([illegible]) [illegible] भी [illegible] [illegible] [illegible] मान लिया है।

[illegible]

* [illegible]

कोई दूसरा व्यक्ति होना चाहिये। यह दूसरा व्यक्ति शैतान है। परन्तु यह तर्क सर्वथा अयुक्त है। इसी प्रकार कोई पुरुष यह तर्क उठा सकता है कि प्रकाश और अन्धकार दो विरोधी पदार्थ हैं। सूर्य्य प्रकाश का मूल है अतएव अन्धकार को पैदा करने वाला भी कोई गोला आकाश में अवश्य होगा। इस तर्काभास में दोष यह है कि प्रकाश और अंधकार को दो पृथक् वस्तु मान लिया है। वस्तुतः प्रकाश ही एक वस्तु है और अन्धकार उसके अभाव का नाम है। इसी प्रकार भलाई एक वास्तविक पदार्थ है और बुराई उसका अभाव मात्र है। जहाँ सूर्य्य चमकता है वहीं प्रकाश होता है, जहाँ सूर्य्य की रश्मियाँ नहीं पहुँचतीं, वहाँ अन्धकार रहता है। इसी प्रकार जिस आत्मा में ईश्वरीय प्रकाश है वहाँ धर्म वा पुण्य है और जिस आत्मा में ईश्वरीय ज्योति प्राप्त या ग्रहण करने की शक्ति नहीं वहाँ अधर्म वा पाप हैं अथवा यों कहिये कि वहाँ आत्मिक अन्धकार है।

ज़न्दावस्ता में भी शैतान का व्यक्तित्व सन्देह युक्त है। प्रो० डरामेस्टेटर एल० एच० मिल्स तथा अन्य अनेक विद्वान् इस बात की पुष्टि करते हैं। परन्तु डक्टर हाँग उसे इन स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार करते हैं:—'एक ऐसी पृथक् पापात्मा जो अहुरमज़दा के समान शक्तिमान हो तथा सदैव उससे विरोध रखती हो, ज़रदुश्ती धर्म के प्रतिकूल है, यद्यपि प्राचीन ज़रदुश्तियों में इस प्रकार के विचार का होना वेन्दीदाद जैसे पिछले ग्रन्थों से अनुमान किया जा सकता है।" *

इस प्रकार डाक्टर हाँग के अनुसार अंगरामन्यु कोई पृथक् व्यक्ति नहीं है। परन्तु कुरान और इंजील के शैतान के सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। इससे सिद्ध होता है कि वेदों के सत्य अलंकार को समझने में प्रथम कुछ भ्रम होकर उसका कुछ रूपान्तर हो गया, और अन्त में उसे इस प्रकार बिगाड़ा गया जिससे वह केवल हास्यजनक वार्त्ता और अयुक्त गाथा के रूप में अवनत हो गया।

---

* Haug's Essays, p. 303.

इससे यह भी प्रकट होता है कि संसार के [illegible] विज्ञान [illegible] उनके अपने निज के ज्ञान पड़ते हैं यान्तर से [illegible] हुए रूपान्तर मात्र हैं।

५—फ़रिश्ते।

यह बात हम द्वितीय अध्याय में कह चुके हैं कि फ़रिश्तों का [illegible] जो यहूदियों ने मुसलमानों को दिया है वह [illegible] विचार से समानता रखता है।

डाक्टर मेल लिखते हैं कि यहूदियों ने फ़रिश्तों के [illegible] की शिक्षा पारसियों से ग्रहण की, जैसा कि [illegible] (देखो Talmud [illegible] [illegible]) [illegible] के पारसी फ़रिश्तों के [illegible] और [illegible] के संरक्षक पर पूरा विश्वास रखते थे (जैसा कि [illegible] मत रखते हैं), और इसीलिये उन्होंने फ़रिश्तों के [illegible] और [illegible] को अलग-अलग नियत किया था और [illegible] के नाम उनके नाम पर रखते थे। [illegible] अथवा [illegible] करते थे। [illegible] फ़रिश्ते को वे [illegible] नामों के [illegible] से पुकारते थे। [illegible] यज्ञाग्नि के लिये [illegible] प्रदान करता है। यहूदियों का [illegible] कि [illegible] अग्नि से [illegible] ऋतुओं को [illegible] को वे 'कृपा' के नाम से पुकारते हैं और [illegible] ऋतुओं को [illegible] हैं।

पारसी लोग भी बारह [illegible] फ़रिश्तों पर विश्वास [illegible] वहुमन, अरदीबहिश्त, [illegible], [illegible], [illegible] [illegible]

* मेल साहब का इस्लाम [illegible] पृ० ३६।

उनका अधिदेव अहुर मजदा) जिन को ❀ अमेशस्पन्त कहते हैं। पादरी एल० एच० मिल्स कहते हैं कि अमेशस्पंतों को आत्मा की पदवी देने का विचार (बाईबिल के †) सात आत्माओं का मूल कारण हो सकता है जो ईश्वर के सिंहासन के सम्मुख रहते हैं। ††

६—सृष्टि उत्पत्ति।

ज़न्दावस्ता के अनुसार संसार छः कालों में बना है जिस क्रम से सृष्टि के विविध भाग रचे गये वह वही क्रम हैं जो बाईबिल में वर्णित

❀डा० हॉग के अनुसार यदि अमेशस्पन्त को यथार्थ रूप में समझा जाय तो वह कोई भिन्न व्यक्तियाँ नहीं हैं किंतु वे अहुर मजदा की उन विभूतियों के नाम हैं जिन्हे वह अपने सच्चे उपासकों को प्रदान करता है। वे लिखते हैं:—

वे नाम कि जिनसे अमेशस्पंत पुकारे जाते हैं अर्थात— बहुमनु, अशा वहिश्त, क्षत्रवैर्य्य, स्पंताअर्मैति, हैर्वताद, अमर्ताद गाथाओं में बहुधा आते हैं। परंतु जैसा कि पाठकों को उन स्थलों से (देखो यास ४७) और उनके पूर्वापर प्रसंग से ज्ञात होगा। वे केवल उन गुण वा विभूतियों के नाम हैं जिन्हे ईश्वर उन लोगों को प्रदान करता है जो सत्यभाषण और शुभ कर्मद्वारा उसकी सत्हृदय से पूजा करते हैं। ज़रदुश्त की दृष्टि में वे कोई व्यक्ति न थे, किन्तु यह विचार उस महात्मा के कथन में उसके कतिपय उत्तराधिकारियों ने मिला दिया। (Haug's Essays, p. p, 305-306)

उपर्युक्त छः नामों के अर्थ इस प्रकार हैं:—वहुमनो=पवित्र मन। अशावहिश्त=सर्वोच्च धर्म। क्षत्रवैर्य्य=संसारिक सम्पत्ति की प्रचुरता। स्पन्ता अर्मैति=भक्ति और पवित्रता। हौर्वतादि=स्वास्थ्य। अमर्ताद=अमरत्व।

† देखो ईश्वरीय ज्ञान ८। २।

†† ज़न्दावस्ता भाग ३ पृ० १४५।

हैं। इन दोनों का वर्णन हम नीचे [illegible] लिखते हैं [illegible] पाठकों को [illegible] समझने में [illegible] हो।

ज़रदुश्तियों का वर्णन—	यहूदियों का वर्णन—
पहले समय में आसमान पैदा किया गया; दूसरे में पानी, तीसरे में पृथ्वी, चौथे में वृक्ष, पांचवें में पशु और छठे में मनुष्य उत्पन्न हुए।	पहिले दिन [illegible] पैदा किये गये, दूसरे में [illegible] और पानी, तीसरे दिन [illegible] घास, [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] पांचवें दिन [illegible] [illegible] [illegible], छठे दिन [illegible], [illegible] [illegible] और [illegible]।

प्रो० [illegible] डा० [illegible] समानता [illegible] इस प्रकार लिखते हैं [illegible] पैदाइश [illegible] और [illegible] है [illegible] पी [illegible] उत्पन्न की गई। [illegible] पैदाइश [illegible] की उत्पत्ति [illegible] [illegible] मलोमिन [illegible] पलोमिन [illegible] या निश्चय [illegible] के पारसियों से [illegible] हो। [illegible]

यदि हम [illegible]

---

१ ([illegible])

तब भी हमारे विचार में उपर्युक्त सृष्टि उत्पत्ति-सम्बन्धी दोनों वर्णनों में इतना घनिष्ट सादृश्य है जिसे आकस्मिक नहीं कह सकते।

यह प्रकट होगा कि ज़रदुश्तियों का सृष्ट्युत्पत्ति सम्बन्धी वर्णन वस्तुतः भौतिक विज्ञान की अन्वेषणा के अनुकूल है, जिसने यह सिद्ध कर दिया है कि सृष्टि उत्पत्ति अथवा यों कहिये कि विश्व विकास का प्रथम रूप एक प्रदीप्त पिंड......Nebulous Mass का प्रकट होना था। उसका दूसरा रूप हमारे भूमण्डल को समस्त पिंड से वियुक्त होकर अलग पृथ्वी के रूप मे आना था। इसके पश्चात फिर क्रमशः वनस्पति, पशु और मनुष्य एक दूसरे के बाद प्रकट हुये।

यजुर्वेद सृष्टि उत्पत्ति का इसी क्रम वर्ण करता है—

ततो विराड जायत विराजो अधिपूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथोपुरः॥
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृपदाज्यम्।
पशूस्तांश्चक्रे वानव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये॥
तं यज्ञं वर्हिषि प्रोक्षन् पुरुषं जात नग्रतः।
तेनदेवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥

यजु० अ० ३१ मं ५, ६, ६,

अर्थ—तब एक प्रदीप्त * पिंड उत्पन्न हुआ उसका अधिपति वा सर्वव्यापक परमात्मा था तत्पश्चात् इस प्रदीप्त पिंड से पृथ्वी तथा अन्य शरीर पृथक् हुये। इस सर्व पूज्य परमेश्वर ने वनस्पति पैदा की जो भोजनादि के काम आती है। उसने पशु बनाये जो हवा, जंगल और बस्ती में रहते हैं, उसने मनुष्यों को उत्पन्न किया जिसमें विद्वान् और

* विराट्-वि उपसर्ग और राजा धातु से (जिसका अर्थ चमकता है) बना है अतएव उसका अर्थ प्रदीप्त पिंड किया गया।

ऋषि लोग थी हुए और जिन्होंने इस [illegible] की पूजा की।

यह ध्यान करने की [illegible] से अधिक मिलता है। [illegible] जिसका यहूदी वर्णन [illegible] पर अवलम्बित है। §

७ मृतोत्थान

डाक्टर [illegible] कहते हैं कि "[illegible] जन्तुसितयों का [illegible]।" † [illegible] व्यवस्था के दिन [illegible] सिद्धांत है।" ‡

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है कि [illegible] पारसियों से प्रभावित [illegible] इस जन्मावस्था में प्रकाश [illegible] यत्नों से से जैसा" [illegible] अविनाशी जीवन का [illegible] निर्दोष, दरिद्र और [illegible] (बिना किसी सहायता के) [illegible] काल पर्यन्त [illegible] जावेगा जहाँ से वह [illegible] न्यायालय किया [illegible] हो जावेंगे।" ⊣

§ वैदिक [illegible] पाठकों को [illegible]

† Hastings' [illegible]

‡ Ibid p. 311.

⊣ [illegible] पृष्ठ १६, ८६-६०

यहाँ हम मसीह (जिसे पारसी धर्म ग्रन्थों मे सओश्यन्त कहा गया है) के पुनरागमन, स्वर्गीय जीवन और मृतोत्थान की शिक्षा को ठीक वैसा ही पाते हैं जैसा कि उसका वर्णन बाइबिल मे किया है।

इस सिद्धांत सम्बन्धी बहुत सी बातों के लिये भी यहूदी लोग पारसियों के ऋणी हैं। उदाहरणार्थ उनका तराजू वाला विचार जिसमें न्याय व्यवस्था के दिन प्रत्येक मनुष्य के कार्यों की तुलना की जायगी वास्तव में ज़रदुश्तियों का विचार है। प्रो० डारमेस्टेटर अपनी टिप्पणी में जो पृष्ठ १२ पर की है लिखते हैं:—

"रशमी रजिस्ता सच्चों का सच्चा सत्य का फ़रिश्ता है। वह मिथ् और सिरोश के अतिरिक्त मृतकों के तीन न्यायधीशों में से एक है। वह उस तुला को पकड़ता है जिसमें मृत्यु के उपरान्त मनुष्य के कर्मों की तुलना की जाती है। वह अन्याय पूर्वक नहीं तोलता......धर्मात्मा और शासकों के लिये भी नहीं (अन्याय पूर्वक तोलता)। वह तराजू में बाल भर भी अन्तर नहीं पड़ने देता, और न किसी का पक्ष करता है।" (मीनोख़िरद २, १२०-१२१)* जैसा कि अध्याय ७ अंश २ (३) में पहले ही कहा गया है नरक के पुल का विचार जिस पर कि मृतोत्थान के पश्चात् मनुष्यों को पार उतारना होगा वह भी ज़रदुश्तियों से लिया गया है।

बैलग्रेड के मुख्य रब्बी डाक्टर ए कोहट A. Kohut ने Zeitschrift Der Deutschen Morgenlandischen Gesellschaft. मे † प्रकाशित अपने निबन्ध में यह स्वीकार किया है कि इस विषय की कई और छोटी-छोटी बातों के लिये भी यहूदी लोग पारसियों

---

* ज़न्दावस्ता भाग २, रोश यश्त पृ० १६८

† The part taken by the Parsi Religion in the formation of Christianity and Judaism बैलग्रेड के प्रधान रब्बी स्व० डा० कोहट के जर्मन पुस्तक से अङ्गरेजी अनुवाद होकर फ़ोर्ट प्रिंटिंग प्रेस पारसी बज़ार स्ट्रीट बम्बई में १८९९ में छपा।

के [illegible] हैं [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

इस बात को [illegible] मान [illegible] हैं कि [illegible] [illegible] आत्मा शरीर के [illegible] और घूमता [illegible] है। [illegible] [illegible]' नामक एक पारसी पुस्तक [illegible] [illegible] [illegible] तक इसी स्थान पर रह [illegible] [illegible] [illegible] यह शरीर को छोड़ता [illegible] है [illegible] [illegible] करता है।* (देखो [illegible] [illegible] [illegible] दी गई है)। [illegible] [illegible] Jour Bomb. [illegible] [illegible] और घूमता [illegible] है क्योंकि [illegible] [illegible]

[illegible] नामक एक पारसी [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुस्तकों में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो [illegible] [illegible] [illegible] प्राचीन [illegible] [illegible] ch. [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] परम्परागत [illegible]

---

* देखो पृ० [illegible]

† देखो पृ० [illegible]

‡ [illegible]

|| [illegible]

आगमन समय की घोषणा देते हुए उसके लिये मार्ग ठीक करेंगे, उसी प्रकार मिराश Jalk Jesaj. (※ 305, 318) में वर्णन है-कि "इस लिये वास्तविक मुक्तिदाता से पूर्व यूसफ़ मसीह और मसीह एफ़रेम के पुत्र ये दो अग्रगामी बन कर आवेंगे।" ‡

४-अनेक बार आया वर्णन (Midrasch Gen. R. C. 98, Midr. Jalk Ps. 682 Midr. Ps. C. 21) कि मसीह ३ आदेश लावेंगे। पारसियों के उसी प्रकार के विश्वास का स्मरण दिलाता है कि प्रत्येक मुक्तिदाता एक आदेश लावेगा जो अभी तक प्रकट नहीं हुआ है।"*

५-बन्देहेश के ३१ वें अध्याय मे यह प्रश्न उठाया गया है कि "जो शरीर हवा मे मिट्टी होकर उड़ गया वा जल तरंगों में डूब गया वह फिर कैसे उत्पन्न होगा। मृतक शरीर फिर किस प्रकार जी उठेंगे? इसका उत्तर ओरमज्द ने इस प्रकार दिया है कि 'जिस प्रकार मेरे द्वारा पृथ्वी में डाला हुआ अन्न उग कर फिर एक बार जीवन ग्रहण करता है—जिस प्रकार मैंने वृक्षों में उनके भेद के अनुसार नस नाड़ी दी हैं—जिस प्रकार मैंने वालक को माता के गर्भ में रक्खा है,—जिस प्रकार मैंने पानी को पैर दिये हैं जिनके द्वारा वह दौड़ता है,—जिस प्रकार मैंने वादलों को उत्पन्न किया जो पृथ्वी से पानी को ले जाते हैं और जहाँ मैं चाहता हूँ वहाँ मेघ के रूप मे उसे वरसाते हैं,—जिस प्रकार मैंने इन समस्त वस्तुओं को उत्पन्न किया है उसी प्रकार मृतकों को पुनः जीवित कर देना मेरे लिये कौनसी कठिन वात होगी। स्मरण रक्खो ये सव एक वार हो चुका है, मैंने उन्हें उत्पन्न किया तो क्या मैं उसको जो पूर्व था पुनः उत्पन्न नहीं कर सकता?"

डाक्टर कोहट कहते हैं कि ये सब वातें यहूदियों के पुस्तक Talmnd और Midrasch में आती हैं।

※ पृ० २४।

‡ डा० कोहट का पुस्तक पृ० २३।

मृतोत्थान की सिद्धि में यहूदी [illegible] [illegible] जाता है जो प्रथम पृथ्वी माता की गोद के [illegible] अगणित पत्तियों के रूप में फूट निकलता है। ([illegible] Ketub 111b; Pirke D. R. Eliezer C. [illegible]) [illegible] हुआ नग्न बीज पत्तियों के [illegible] [illegible] धर्मात्मा पुरुष जो अपने कपड़ों सहित भूमि में [illegible] न उठेंगे।" जिस प्रकार [illegible] मृतोत्थान [illegible] वर्षा के चमत्कार समान [illegible] करते हैं, और [illegible] Talmud Taanith 2a; Sanh. [illegible] कुंजियाँ केवल ईश्वर के हाथ में हैं और [illegible] जातीं। वे यह हैं—१—वर्षा की [illegible] [illegible] की कुंजी।" यही बात Midrash Deut. [illegible] Rabba C. 13. में वर्णित है। [illegible] साथ और वैसे ही [illegible] है, [illegible] पूर्ण होना इन दोनों की [illegible] है।

८—भविष्य जीवन स्वर्ग और नरक।

भविष्य जीवन और, स्वर्ग और नरक के [illegible] विश्वास है यह समस्त [illegible] है और [illegible] ही से लिया गया है। [illegible]

भविष्य जीवन और आत्मा के [illegible] में स्पष्ट रूप से वर्णित किया है, [illegible] फैला हुआ है। भविष्य जीवन का [illegible] में से है। [illegible] मिलता जुलता स्वर्ग और नरक [illegible]

* डाक्टर [illegible] पृष्ठ [illegible]

† Hauri's [illegible] P. [illegible]

जरदुश्त ने अपनी गाथा मे स्पष्टतया वर्णन किया है। स्वर्ग का नाम गरोदिमान (फारसी में गरातमन) अर्थात् भजनों का घर है क्योंकि ऐसा विश्वास है कि फरिश्ते वहाँ स्तुतिगान किया करते हैं। यह वर्णन ईसाइयों के उस विचार से सर्वथा समता रखता है जो (बाइबिल) में इसाया ६ और योहन्ना की पुस्तक मे आया है। *

यहूदी और पारसी पुस्तकों में वर्णित स्वर्ग के आनन्दों में जो समानता है उस पर पूर्व ही अध्याय २ अंश २ (४) मे लिखा जा चुका है। डाक्टर कोहट ने एक दूसरे सादृश्य का वर्णन किया है उसको भी हम लिखते हैं। वे कहते हैं :—"मुझे दृढ़ विश्वास है कि अदन के रत्न जटित स्वर्ग का विचार पारसियों से लिया गया है इसी का वन्देहेश के ३१ वें अध्याय के प्रारम्भ में उल्लेख है जहाँ कहा गया है कि—जब मेरे द्वारा स्वर्ग अध्यात्मिक स्थिति में बिना स्तूपों के स्थिर हैं और रत्नों सहित जगमगाते हैं।"

मनोखिरद के १३६ वें पृष्ठ के अनुसार स्वर्ग एक इस्पात लोहे की धातु के जिसे हीरा भी कहते हैं बने हुये हैं। (Spiegel's Commentor, Uberdas Avesta p. 449) स्वर्ग के सुन्दर पत्थरों से बने होने का विचार इतना अधिक प्रचलित था कि ज़न्द भाषा में स्वर्ग और पाषाण के लिये एक ही शब्द 'आसमान' आता है। †

स्वर्ग के ७ विभागों के सम्बन्ध में डाक्टर कोहट कहते हैं—"जैसे पिछली पारसी पुस्तकों में वैसे ही यहूदियों की पुस्तक Talmud (अध्याय १२b) में हमें ७ स्वर्गों के नाम मिलते हैं, जिनमें से ६ नाम बाइबिल मे वर्णित नामों के समान हैं। ‡

नरक और उसके ७ विभागों के सम्बन्ध में पारसी और यहूदी

---

* Haug's Essays p. 31.

† डाक्टर कोहट का पुस्तक पृ० २६

‡ वही कोहट पुस्तक पृ० १६।

आर्य्य लोग समझते थे। इस कृत्य का उन्होंने ठीक-ठीक अर्थ समझा हो इसमें कुछ सन्देह है और इस क्रिया का पारसियों में उसी प्रकार रूप विगड़ गया जिस प्रकार कि हमारे देश मे महात्मा बुद्ध के समय में उसका निरर्थक रूप हो गया था परन्तु तो भी वे लोग दृढ़ता से उसमे लगे रहे और नियमानुकूल उसका अनुष्ठान करते हैं। कदाचित् यही मुख्य कारण है कि वे 'अग्नि पूजक' कहे जाने लगे। पारसियों ने यह यज्ञ क्रिया यहूदियों को सिखाई जिनके हाथों मे उसका रूप और भी अधिक दूषित हो गया। माँस भोजी होने के कारण यहूदियों ने माँस की आहुतियाँ दीं परन्तु वलिदान अग्नि में होता था यह इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि इस यज्ञ क्रिया को उन्हों ने ज़रदुश्तियों से ग्रहण किया। इस विषय पर बाइबिल में विस्पष्ट प्रमाण हैं जिनमे से उदाहरणार्थ दो एक दिये जाते हैं, ईश्वर मूसा से कहता है:—"मेरे लिये तु मृत्तिका की एक वेदी बनावेगा, और उस पर जलती हुई शान्ति की आहुतियाँ देगा। अपनी भेड़ों और बैलों को चढ़ावेगा सब स्थलों पर जहाँ पर मैं अपना नाम लिखूं तेरे पास आऊँगा और तुझे आशीर्वाद दूंगा।"*

फिर 'पैदायश की किताब' में लिखा है—"और नूह ने ईश्वर के लिये एक वेदी बनाई और उसने प्रत्येक पवित्र पशु-पक्षी को लेकर प्रज्वलित अग्नि में वेदी पर आहुतियाँ दीं।"†

मुसलमान लोग, जिन्होंने यह कृत्य सीधा ज़रदुश्तियों से न लेकर यहूदियों से ग्रहण किया उसमें अग्नि का उपयोग न समझ सके। इसी कारण उन्होंने अपने वलिदानों से अग्नि को दूर कर दिया। केवल पशुओं का वध रह गया। कैसा शोक जनक परिवर्त्तन है कि पवित्र और लाभदायक यज्ञ क्रिया के स्थान मे केवल निर्दोष पशुओं का वध होने लगा।

---

* यात्रा की पुस्तक १५–२४

† उत्पत्ति की पुस्तक ८–२०

गया है। तू एक सनोवर की लकड़ी की एक नाव बना, तू इस नाव में कोठरियाँ बना और देख! मैं स्वयम् इन सब जीवधारियों का जितने में जीवन का श्वास है आसमान के नीचे से नाश करने के लिये जल-प्रलय करूंगा इससे पृथ्वी की समस्त वस्तुएँ नष्ट हो जावेंगी। परन्तु तुझ से प्रतिज्ञा करता हूँ कि तू नाव में आवेगा और अपने बेटे, स्त्री और पुत्र वधू को साथ लावेगा। सब प्रकार के प्राणियों में से दो दो अपने साथ जीवित रखने के लिए लावेगा। उनमें एक नर और दूसरी मादा होगी। प्रत्येक प्रकार के पक्षियों, पशुओं और पृथ्वी पर रेंगने वाले जीवों में से दो दो को जीवित रखने के लिये तू अपने साथ लावेगा। *

इसी प्रकार ज़न्दावस्ता में अहुरमज़्दा उस यिम को सूचित करता है "जो आदि पुरुष, आदि राजा और सभ्यता का संस्थापक है।" † कि "भयानक शीत ‡ द्वारा संसार नष्ट होने वाला है। "और अहुर-मज़्दा ने यिम से कहा है विवंघत के पुत्र सुन्दर यिम प्राकृतिक संसार-कारी शीत पतन होने वाला है जो भयङ्कर और बुरे पाले को अपने साथ लावेगा भौतिक संसार पर विनाशक शीत का पतन होने वाला है, जिससे उच्चतम पर्वतों तक पर घुटनों के बराबर गहरे हिम के पर्त गिरेंगे। × × × × और तीनों प्रकार के पशुओं का नाश हो जायगा।"

तब अहुरमज़्दा यिम को परामर्श देता है कि ऐसा घर बनाया जावे जिसमें वह अन्य जीवित प्राणियों के जोड़े के साथ शरण पा सके—

"२५—इस लिये एक लम्बा घर बना जैसा कि घोड़ा दौड़ाने का मैदान चारों ओर होता है। उसमें भेड़, बैल, मनुष्य, श्वान, पक्षी और लाल प्रज्वलित अग्नि का बीज रख।

---

* उत्पत्ति की पुस्तक ६। ५—८, १३—२०

† देखो ज़न्दावस्ता भाग १ पृष्ठ १०।

‡ कुछ विद्वान अनुवाद करते हुए भयानक शीत के स्थान में वर्षा, लिखते हैं। देखो ज़न्दावस्ता भाग १ पृ० १६ का फुट नोट।

"२७—इसमें तू प्रत्येक प्रकार के वृक्षों के बीज, प्रत्येक प्रकार के फलों के बीज ला जिनमें सब से अधिक अन्न और सुगन्धि हो। प्रत्येक प्रकार की वस्तुओं में से दो दो ला जिन से वह उस समय तक जब तक कि आदमी उस वर में रहे नष्ट न होने पावे।"*

ये समानताएं स्पष्ट हैं। प्रो० डारमेस्टेटर साहब लिखते हैं कि "यम का वर नूह की नौका से अधिक कुछ नहीं हुआ।"†

इस जल—बाढ़ की कथा शतपथ ब्राह्मण में भी पाई जाती है कि जो वेदों को छोड़ संस्कृत साहित्य की प्राचीनतम पुस्तकों में से है इसमें बताया गया है कि एक मछली ने मनु को सूचना दी कि 'अमुक वर्ष में जल की बाढ़ आवेगी अतएव एक नाव बनाओ और मेरी रक्षा करो। जब बाढ़ अधिक बढ़ने लगे तो तुम नाव में प्रवेश करो मैं तुमको बचाऊँगा। तदनुसार ही मनु ने किया।' × × × × × आगे यह बतलाया गया है कि बाढ़ समस्त जीवों को बहा ले गई, परन्तु मनु महाराज अपनी नाव में बच जाने के कारण वर्तमान मनुष्य जाति के पिता हुये।

(३) डाक्टर स्पीगल अदन के बाग और ज़रदुश्ती स्वर्ग के मध्य समानता बतलाते हैं। बाइबिल में वर्णित अदन के बाग की दो नदियों अर्थात् 'पिशन' और 'गिहन' को वे सिन्धु और फ़रात बतलाते हैं। और अदन के दो वृक्ष अर्थात् ज्ञान और जीवन के वृक्षों को वे [illegible] (संस्कृत सोम) उत्पन्न करने वाला 'गाव करन' वृक्ष और [illegible] बतलाते हैं। इन दो नदियों के सम्बन्ध में प्रो० मोक्समूलर लिखते हैं—"[illegible] डाक्टर स्पीगल से सहमत हूँ कि [illegible] नदी के सिन्धु और [illegible] के फ़रात नहीं होने में [illegible] सन्देह है।"‡

परन्तु दोनों वृक्षों के सम्बन्ध में [illegible] है कि "[illegible]

* देखो [illegible] भाग १, [illegible] ११—२० [illegible]
† देखो [illegible] भाग १ [illegible]
‡ Chips Vol I. p. [illegible]

हैं कि जब तक हम पारसियों के दोनों वृक्षों के विषय में अधिक अभिज्ञता प्राप्त न करलें तब तक हमारी तनिक भी प्रवृत्ति (पारसियों के) पीड़ा हीन पेड़ और (बाइबिल के) ज्ञान वृक्ष के एक होने की ओर नहीं होती। परन्तु सम्भव है कि श्वेतहोम का वृक्ष हमे (बाइबिल के) जीवनतरु का स्मरण करावे, क्योंकि होम और भारतवर्षीय सोम दोनों के विषय में यही विश्वास है कि उनके रसपान करने वाले अमरत्व को प्राप्त होते हैं।" *

सारांश

हमने यह सिद्ध किया कि यहूदियों ने अपने धर्म के मुख्य सिद्धान्त जरदुश्तियों से लिये। पूछा जा सकता है कि यहूदी धर्म में कौनसी बात मौलिक वा नई है? उसमें यह कौनसी बात है जो ज़रदुश्तियों के मत से निराली है और जिसके सम्बन्ध में नवीन और विशेष प्रकार का ईश्वरीय ज्ञान होने का दावा किया जा सकता है? ईसाई और यहूदी कदाचित् यह उत्तर देंगे कि यहूदी मत की उत्कृष्टता और उसके ईश्वरीय ज्ञान होने का यह प्रमाण हैं कि वे पारसियों की दो ईश्वर वाली शिक्षा की अपेक्षा उत्तमतर एक ईश्वरवाद सिखाते हैं। इसका हम उत्तर यह देंगे कि ईसाइयों के ईश्वरवाद की तो कथा ही क्या है जिसमें त्रैत (अर्थात् एक ईश्वर में तीन आत्माओं) की अचिन्तनीय और विलक्षण शिक्षा है, - यहूदी लोग भी ईश्वर के सम्बन्ध में ऐसे विचारों का अभिमान नहीं कर सकते जो पारसियों के विचारों की अपेक्षा पवित्रतर और उत्तम हैं। एक स्थल पर जिसका एक अंश हम पूर्व उद्धृत कर चुके हैं—डाक्टर हॉग लिखते हैं— "स्पितामा जरदुश्त का अहुरमज़दा वा ईश्वर सम्बन्धी विचार उस इलाही वा जेहोवा [ईश्वर] के विचारों से सर्वथा समानता रखता है जिसका वर्णन हम पुरानी 'धर्म पुस्तक' मे पाते हैं। वह अहुरमज़दा को सांसारिक और आत्मिक जीवन का विधाता, अखिल विश्व का स्वामी कहता है, जिसके हाथ में समस्त प्राणी हैं। वह प्रकाश स्वरूप और प्रकाश का

* देखो Chips Vol. I. p. 156-157

मूल है। वह बुद्धि और ज्ञान स्वरूप है [illegible] और वास्तविक प्रत्येक वस्तु है, यथा—(यहूवा) विशुद्ध सत् ([illegible]), अमरत्व (इम्मॉर्टलिटी) स्वातंत्र्य ([illegible]) [illegible], ([illegible]) भक्ति और पवित्रता ([illegible]) [illegible] बहुलता। ये सब विभूतियाँ [illegible] हैं [illegible], बचन, धर्म [illegible] है। [illegible] ([illegible] पृ० ९३।४)। [illegible] पैदा किया जाता है [illegible] है। [illegible] है, वह [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible]

वह [illegible] है— "[illegible]" [illegible] ([illegible]) [illegible]

[illegible]

[illegible]

---

* [illegible]

† [illegible]

‡ [illegible]

Texts (Secred Books of the East Series) के अनुवाद की भूमिका में स्पष्ट लिखा है कि यदि 'पाठकगण उस अपूर्व विचार के समर्थन की खोज करेंगे कि पारसी धर्म में ईसाई धर्म की अपेक्षा अधिक दो ईश्वरवाद की शिक्षा है, जैसा कि साधारणतः कट्टर ईसाई ग्रन्थकार सिद्ध किया करते हैं, अथवा उस विचार का संकेत खोजेंगे कि भली और बुरी आत्मा की उत्पत्ति अनन्त काल से हुई जैसा कि इस धर्म से अनभिज्ञ लोग कहा करते हैं,—तो उनकी अन्वेषणा निरर्थक होगी। यही नहीं प्रत्युत वाईविल और कुरान का ईश्वर और शैतान सम्बन्धी विचार ज़रदुश्तीमत सिद्धान्त का कुछ विगड़ा हुआ रूप है। ज़रदुश्ती विचार पूर्वोक्त धर्म की अपेक्षा अधिक युक्त है डाक्टर हाँग के निम्नलिखित शब्दों से अधिक और क्या स्पष्टीकरण हो सकता है—"यह सम्मति जो अब इतनी अधिक प्रसिद्ध हो गई है कि ज़रदुश्त दो शक्तियों की शिक्षा देते थे अर्थात् यह सिखलाते थे कि प्रारम्भ में दो स्वतन्त्र आत्माएँ थीं एक अच्छी और दूसरी बुरी, एक दूसरी से सर्वथा पृथक् और विपरीत रहने वाली,—यह सम्मति सत ज़रदुश्त के तत्ववाद और उनके ईश्वरवाद में में भ्रान्ति करने से पैदा हुई है। परमात्मा की एकता और अविभागता के महान् विचार पर पहुंच कर उसने उस बड़े प्रश्न को हल करने का यत्न किया जिसकी ओर अनेक प्राचीन तथा आधुनिक विद्वानों का ध्यान गया है,—अर्थात् संसार की अपूर्णताएँ, विविध प्रकार के दूषण, पाप और नीचता आदि ईश्वर की भलाई, पवित्रता और न्याय से किस प्रकार प्रतिकूल हो सकते हैं? प्राचीनकाल के इस महा मुनी ने दो मूल कारणों की कल्पना करके इस कठिन प्रश्न को तात्विकदृष्टि से हल किया। ये कारण यद्यपि परस्पर भिन्न थे तथापि इन्होंने मिलकर प्राकृतिक एवम् आध्यात्मिक संसार की उत्पत्ति की। यह बात यस्न अ० ३० (देखो पृ० १४६—१५१) से भली भाँति जानी जा सकती है।"

"अहुर मज़दा जिसने नव (गया) को उत्पन्न किया वहुमनो अर्थात् 'अच्छा मन' कहलाता है। दूसरा जिससे, अमत (अज्योति) पैदा हुई

डाक्टर हॉग की सम्मति में ज़रदुश्त का अंगरामन्यु सम्बन्धी विचार फिलासफी के कुछेक कठिन प्रश्नों की पूर्त्ति करने का यत्नमात्र था। परन्तु यह बात बाइबिल के शैतान के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। उसका पृथक् व्यक्तित्व निर्विवाद है। ऐसी अवस्था में हम नहीं समझ सकते कि यहूदी मत किस प्रकार प्रतिज्ञा करता है कि वह जरदुश्तीमत की अपेक्षा उत्तम- ईश्वरवाद की शिक्षा देता है। वास्तव में ईश्वर के सम्बन्ध में ज़रदुश्तियों का विचार अनेक बातों में यहूदियों के बदला लेने वाले, क्षण में रुष्ट और क्षण में प्रसन्न होने वाले और क्रोधी जेहोवा से उच्चतर हैं। केवल यह द्वैतवाद जिसका ऊपर वर्णन किया गया है—ऐसा दोष है जो ज़रदुश्ती ईश्वरवाद की उत्कृष्टता पर कुछ अंश तक धब्बा लगाता है। अगले अध्याय में हम इस बात को सिद्ध करेंगे कि केवल वेदोक्त ईश्वर-वाद ही इस दूषण से रहित है, और केवल वही ईश्वरवाद सब से सच्चा विशुद्धयुक्त और तात्विक है।

पंचम अध्याय।

ज़रदुश्तीमत का आधार वैदिक धर्म है।

अब हम अपनी तर्क शृंखला की अन्तिम कड़ी की ओर आते हैं, जो यह है कि ज़रदुश्तीमत का उत्पत्ति स्थान वेद है। हम इस विषय को—

वैदिक और ज़न्दभाषा के सादृश्य से आरम्भ करेंगे।

यह समानता इतनी आश्चर्यजनक है कि एसियैटिक सोसाइटी के प्रसिद्ध प्रवर्त्तक सर विलियम जोन्स लिखते हैं—"जब मैंने ज़न्दभाषा के शब्द कोष का अनुशीलन किया तो यह ज्ञात करके कि उसके १० शब्दों में ६ या ७ शब्द शुद्ध संस्कृत के हैं अकथनीय आश्चर्य हुआ, यहाँ तक कि उनकी कुछेक विभक्तियां भी (संस्कृत) व्याकरण के

नियमानुसार ही बनाई गई हैं, [illegible] [illegible]' है।" ॥

[illegible] धर्म और साहित्य के [illegible] अर्थात् डाक्टर हॉग लिखते हैं—"[illegible] में जो आजकल वैदिक भाषा कही जाती है, [illegible] मिलता यूनानी भाषा की विविध बोलियों ([illegible] or Attic) का [illegible] है।"

[illegible] के पवित्र मन्त्रों की भाषा, [illegible] ही जाति के दो पृथक्-पृथक् भेदों की [illegible] Ionians, [illegible] इत्यादि [illegible] भेद थे [illegible] [illegible] [illegible] पक्ला होना ही [illegible]

[illegible]

[illegible]

2 देखो [illegible]

[illegible]

[illegible]

Hau[illegible]

की विभक्तियों में भी पाते हैं जैसे ज़न्द स्पन् संस्कृत श्वन् (कुत्ता) शब्द के रूप देखिये:—

विभक्ति	जन्द	संस्कृत
एक वचन प्रथमा	स्पा	श्वा
,, द्वितीया	स्पानम्	श्वानम्
,, चतुर्थी	सुने	शुने
,, षष्ठी	सुनो	शुनः
बहुवचन प्रथमा	स्पानो	श्वानः
,, षष्ठी	सुनाम्	शुनाम्

ऐसे ही ज़न्द पथन् संस्कृत पथिन के रूप:—

बहुवचन प्रथमा	पन्ता	पन्थाः
,, तृतीया	पथा	पथा
बहुवचन प्रथमा	पन्तानो	पन्थानः
,, द्वितीया	पथो	पथः
,, षष्ठी	पथाम्	पथाम् ।"*

आगे वे कहते हैं:—'संज्ञाओं से जिनमें तीन वचन और ८ कारक पाये जाते हैं यह बात अच्छी तरह जानी जा सकती है कि ज़न्द भाषा वैदिक संस्कृत से प्राय: पूर्ण रूपेण मिलती है ।"†

ज़न्दावस्ता के विद्वान् अनुवादक पादरी एल० एच० मिल्स का का कथन है कि—"मैंने भी गाथाओं‡ की भाषा का बहुत सा भाग वैदिक संस्कृत में परिवर्त्तित किया है। (वस्तुत: यह एक सार्वभौमिक प्रथा हो गई है कि गाथा और ऋचाओं के मध्य जहाँ तक समानता रहती है वहाँ तक समस्त शब्दों की तुलना वैदिक भाषा से की जाती है। ††)"

---

* Haug,s Essays p. 72.

† Ibid p, 68.

‡ ज़न्दावस्ता के प्राचीन भाग का नाम गाथा है।

†† ज़न्दावस्ता भाग ३ भूमिका पृ० १४ (S. B. E. Series)

प्रोफ़ेसर मोक्षमूलर कहते हैं:—

यूजिन बर्नफ़ (Eugene Burnouf) के इन्हीं और [illegible] के मूल्यवान लेख से जो उन्होंने [illegible] ([illegible] Grammar) नामक पुस्तक में दिया है यह [illegible] है कि [illegible] भाषा अपने व्याकरण और शब्द कोष के विचार से [illegible] Indo-European भाषा की [illegible] [illegible] [illegible] रखती है। [illegible] के शब्द में केवल [illegible] स्थान में वैसा ही संस्कृत [illegible] लिख देने से वे [illegible] संस्कृत [illegible] बन जाते हैं। [illegible] भाषा और [illegible] [illegible], अनुनासिक और [illegible] है। [illegible] संस्कृत [illegible] के स्थान में [illegible] 'ह' आता है। यहाँ संस्कृत [illegible] (अर्थात् यूरोप की भाषाओं) के शब्द और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दोनों में [illegible]।"

दोनों भाषाओं [illegible] [illegible]

[illegible]

* [illegible]

[illegible]

सोम	होम	एक औषधी वा बूटी
सप्त	हप्त (फारसी हफ्त) सात	
मास	माह (फ़ा० माह) महीना	

अथवा असु (प्राण)= रम= आनन्द करना से बनता है। उसका अक्षरार्थ (प्राणदाता) है। अर्वाचीन संस्कृत में यह शब्द सदा बुरे अर्थों में व्यवहृत होने लगा है, और वह केवल राक्षस का पर्याय वाचक बन गया है, जिसका यह अर्थ है कि जो व्यक्ति केवल प्राणों में रमण करता अर्थात् अपने वर्त्तमान जीवन मे प्रसन्न होता वा उसका उपभोग करता है, आगामी जीवन का ध्यान नहीं करता, जो केवल शरीर का पोषण करता है आत्मा पर नहीं करता। परन्तु वेदों में यह शब्द अनेक वार परमेश्वर के लिये प्रयुक्त किया गया है। हम डाक्टर हॉग की सम्मति उद्धृत करते हैं.—

"ऋग्वेद के प्राचीन भागो मे हम 'असुर' शब्द को उन्हीं अच्छे और प्रशस्त अर्थों में व्यवहृत हुआ पाते हैं जैसा कि ज़ंदावस्ता में। प्रधान देवता यथा इन्द्र (ऋ० वे० १, ५४, ३) वरुण (ऋ० वे० १, २४, १४) अग्नि (ऋ० वे० ४, २, ५, ७, २, ३) सवितृ (ऋ० वे० १, ३, ५, ७) रुद्र या शिव (ऋ० वे० ५, ४२, ११) इत्यादि को असुर की पदवी से सन्मानित किया गया है। इसके अर्थ 'जीवित' और 'आत्मिक' के हैं। यह मानवी स्वरूप के मुक़ाबिले मे ईश्वरीय स्वरूपका बोधक है (Haug's Essays pp. 268—269)

संस्कृत	जन्द	अर्थ
सेना	हेना	फ़ौज
अस्मि	अह्मि	मैं हूँ
सन्ति	हेन्ति	वे हैं
असु	अंहु	जीवन, प्राण

संस्कृत	प्राकृत	अर्थ
विद्वान्	[illegible]	[illegible], [illegible]

[illegible]

संस्कृत '[illegible]' का [illegible] में '[illegible]' हो जाता है:—

संस्कृत	प्राकृत	अर्थ
हृदय	[illegible]	[illegible]
हस्त	[illegible] ([illegible])	[illegible]
कथा	[illegible]	[illegible]
हीन	[illegible]	[illegible]
आदि	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible], [illegible], [illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible], [illegible] है।

संस्कृत '[illegible]' शब्द के '[illegible]' में बदल जाता है:—

संस्कृत	प्राकृत	अर्थ
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]

* [illegible]

संस्कृत	ज़न्द	अर्थ
जिह्वा	*हिज़्वा (फ़ा० ज़बान)	जीभ
अजा	अज़ा	बकरी
जानु	ज़ानु	घुटना
यज्ञ	यस्न	पूजा, बलि
यजत	यज़त	उपास्य, पूज्य देवदूत

संस्कृत 'श्व' ज़न्द के 'स्प' से बदल जाता है:—

संस्कृत	ज़न्द	अर्थ
विश्व	विस्प	सब
अश्व	अस्प	घोड़ा
श्वन्	स्पन्	कुत्ता

संस्कृत 'श्व' और 'स्व' कभी कभी ज़न्द में "क्" से बदल जाते हैं:—

श्वसुर	क़्सुर [फ़ा० ख़ुसुर]	सुसर
स्वप्न	क़फ़्न	१—सपना
स्वाप	ख़्वाब (फ़ा०)	२—सोना, सपना देखना

संस्कृत 'त' ज़न्द 'थ' से बदल जाता है :—

संस्कृत	ज़न्द	अर्थ
मित्र	मिथ्र (फ़ा० मिहिर)	१—मित्र २—सूर्य्य ३—ईश्वर

* अधिक मिलता हुआ रूप 'जिह्वा' होता परन्तु व्यञ्जनों का स्थान परिवर्त्तन हो गया है। व्याकरण सम्बन्धी परिवर्त्तनों में यह एक बहुत साधारण बात है। उदाहरणार्थ संस्कृत चक्र (घेरा या पहिया) ज़न्द

संस्कृत	[illegible]	[illegible]
त्रित	त्रिध	[illegible]
श्रृगाल	[illegible] ([illegible])	
मन्त्र[illegible]	[illegible]	[illegible]

संस्कृत के [illegible] के शब्द [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पाये गये और कुछ अन्य शब्दों में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है —

संस्कृत	[illegible]	[illegible]
पितर् (पितृ)	[illegible] ([illegible] [illegible])	[illegible]
मातर् (मातृ)	[illegible] ([illegible] [illegible])	[illegible]
भ्रातर् (भ्रातृ)	[illegible] ([illegible] [illegible])	[illegible]
[illegible]	[illegible] ([illegible] [illegible]	[illegible]
पशु	[illegible]	[illegible]
गो	[illegible] ([illegible] [illegible])	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible] ([illegible] [illegible])	[illegible]
		[illegible]
[illegible]	[illegible] ([illegible] [illegible])	[illegible]
[illegible]	[illegible] ([illegible] [illegible])	[illegible]
[illegible]	[illegible] [illegible] [illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]

[illegible]

संस्कृत	ज़न्द	अर्थ
नमस्ते	नमस्ते*	मैं तुमको नमता हूं
मनस्	मनो	मन विचार
यम	यिम	शासक, राजा विशेष का नाम
वरुण	वरेन	देवताओं के नाम
वृत्रहन्	वृथ्घ्न	
वायु	वायु	
अर्य्यमन्	एर्यमन	
अर्मति‡	अर्मेति	१—भक्ति २—पृथ्वी
इषु	इशु	वाण
रथ	रथ	रथ
रथस्थ, रथेष्ठ	रथेस्थ	रथ का सवार
गांधर्व	गाधर्व	
प्रश्न	प्रश्न	सवाल
अथर्वन	अथर्वन	पुरोहित
गाथा	गाथा भजन,	प्रार्थना पवित्र गीत

* हम आतर्श यश्त (Atarsh yasht) से उद्धृत करते हैं जहाँ ये शब्द आये हैं:—"नमस्ते आतर्श मज़दा अहुरह्य"

‡ "अर्मति वेदों में एक स्त्रीलिङ्ग वाचक पद है, जिसके अर्थ १ भक्ति आज्ञापालन (ऋ० १-६-३४-२१) पृथ्वी (ऋ० १०, ६२,-४-५) हैं। यह और अर्मैति नामक प्रधान स्वर्गीयदूत एक ही हैं, जैसा कि पाठकों को तृतीय निबन्ध से ज्ञात हो गया होगा ज़न्दावस्ता में भी ठीक यही दो अर्थ आते हैं।" (Haug's Essays p. 274)

संस्कृत	हिन्दी	अर्थ
इष्टि	इष्टि	[illegible]
कपोतपाल	कपोतपाल	[illegible]
छन्द. [illegible]	छन्द	१–[illegible]
		२–[illegible]
उपाध्याय:	[illegible]	[illegible]

[illegible] से मिलता है) निकला मानते हैं और [illegible] | [illegible] 'छन्द' से निकला है | [illegible] संस्कृत शब्द ([illegible] शब्द का [illegible] है | [illegible] पाणिनि [illegible] दिया है | पाणिनि व्याकरण में [illegible] है | [illegible] संस्कृत में नहीं | [illegible] अनुवाद [illegible] की भाषा ([illegible]) [illegible] Vol. I, p [illegible])

[illegible] ध्यान देने की बात है कि [illegible] भाषा [illegible] दोनों के लिए [illegible] की आवश्यकता नहीं [illegible] होता है, [illegible]

[illegible] शब्द की [illegible] है — [illegible] ([illegible] कि [illegible] J. M[illegible] [illegible]

इन्द्र इन्द्र❀

देव देव❀

यदि हम यहाँ ज़न्दावस्ता के दो एक वचनों को उद्धृत करके उनका संस्कृत भाषा मे अनुवाद करदें तो कदाचित् यह अरुचिकर कार्य न होगा। उससे पाठकगण यह बात ज्ञात कर सकेंगे कि इन दोनों भाषाओं के मध्य कितना थोड़ा अन्तर है।

ज़न्द	वैदिक संस्कृत
विस्प द्रुच्च जनैति	विश्व दुरक्षो जिन्वति

इससे भी अधिक सन्तोषजनक अर्थ उपलब्ध हो सकते हैं यदि 'अवस्ता' को अ+विस्ता से निकाला जाय [जो विद् ज्ञाने धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप है]। ऐसी व्युत्पत्ति करने से उसके अर्थ "जो कुछ जाना गया" या "ज्ञान" के होंगे, जैसा कि वेद शब्द के अर्थ हैं जो ब्राह्मण की पवित्र पुस्तक है।" (Haug p. 1 1)

इस पिछले निर्वाचन मे हमको कुछ खेंचातानी ज्ञात होती है। हमारे विचार में विद् ज्ञाने धातु से जिससे वेद शब्द निकाला है अवस्ता शब्द निकालने का वृथा प्रयत्न किया गया है। हम प्रो० मैक्स मूलर साहब से सहमत हैं और मानते हैं कि 'अवस्ता' संस्कृत 'अवस्ता' शब्द का दूसरा रूप है क्योंकि संस्कृत स्था ज़न्द मे स्ता रूप हो जाता है। संस्कृत शब्द 'अवस्था' अब तक 'स्थापित' और स्थिरता के अर्थों में आता है। यद्यपि उसका प्रयोग "स्थापित नियम अथवा आदेश" के अर्थ में नहीं होता, तथापि हम 'व्यवस्था' शब्द को (जो 'अवस्था' ही का रूपान्तर है केवल 'वि' उपसर्ग उससे पूर्व और लगा है) इस अर्थ में प्रयुक्त करते हैं।

❀ ये दोनों शब्द जन्द में बुरे अर्थों में प्रयुक्त होने लगे हैं। 'देव' के अर्थ 'बुरी आत्मा, और 'इन्द्र' के अर्थ 'बुरी आत्माओं का राजा' हो गये हैं (इन्द्रसभा आदि नाटक देखने वा पढ़ने वालों ने इन्द्र की सभा में लाल देव और काले और काले देव देखे होंगे) पाठक

विरय ? स नशेति [illegible]
तथा दर्शाति उदाम् [illegible]
प्रत्येक सुरें [illegible] नाम
हो जाता है। प्रत्येक सुरें [illegible]
भाग जाती है। जब यह इन
शब्दों को सुनता है।
(भजन ३४ भजन ८ [illegible]
हरि मन्त्र पे. पृष्ठ १६६ से
उद्धृत किया गया)

[illegible]

[illegible]
वांद यो. [illegible]
[illegible]
[illegible] ।२३।
[illegible]
[illegible] ([illegible]
[illegible]
[illegible] है)

[illegible]

[illegible]

हे अहुर, मैं तुझ से पूछता हूं तू मुझे सत्य बता कि किस पैदा करने वाले,सत्य निष्ठा के जनक ने सूर्य और नक्षत्रों को मार्ग दिया। तेरे अतिरिक्त ऐसा कौन है जो चन्द्रमा को बढ़ाता और घटाता है। हे मुज़्दा! मैं ऐसी और बातों को भी जानना चाहता हूं।

२—छन्दों की समानता।

यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि ज़न्दावस्ता की छन्द रचना भी वेदों से घनिष्ट समानता रखती है। डाक्टर हाग लिखते हैं कि—"जो छन्द गाथाओं में प्रयुक्त हुये हैं वे उसी प्रकार के हैं जैसा कि वैदिक मन्त्रों मे पाये जाते हैं।"*

पादरी मिल्स का विचार है कि—"वैदिक मन्त्रों के चन्द गाथा और पिछले अवस्ता के मन्त्रों से बहुत कुछ सादृश्य रखते हैं।"†

उदाहरणार्थ स्पन्ता मन्यु गाथा के विषय में लिखते हैं—"इसके छन्द को त्रिष्टुप कहा जा सकता है क्योंकि उसके प्रत्येक चरण मे ११ अक्षर हैं और उसकी चार पदों में पूर्त्ति होती है।"‡

उश्तावेती गाथा यसन अध्याय ४४ मन्त्र ३ के विषय में जो ऊपर उद्धृत करके वैदिक संस्कृत मे अनुवादित की गई है, डाक्टर हॉग कहते हैं—कि "यह छन्द (जिसमें ११ अक्षर के ५ पाद हैं) वैदिक त्रिष्टुप से

---

* Haug's Essays, p. 143.

† Zend Avesta, preface, p. XXXV1.

‡ Ibid, p. 145.

वाम पनिहुवा बनता है, जिनमें १०, ११ [illegible]
कुल ४५ छन्द होते हैं । [illegible]
गत, यह यह जाता है । [illegible]
का पुनः-पुनः [illegible] मौजूद है। क्योंकि [illegible]
११, ११ छन्दों का [illegible] के कुल ४५ [illegible]
छन्द जिनमें त्रिष्टुप के होते हैं ।[illegible]

[illegible]
के अनुवादित किया गया है [illegible] है— [illegible]
[illegible] है, जिनमें ४५ [illegible] होते हैं । [illegible]
[illegible] है ।[illegible]

[illegible]
[illegible] है, [illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

और ३१ वें अध्याय की प्रथम दो पंक्तियाँ) उष्नि: आसुरी जिसमें १४ अक्षर होते हैं (Vohukhshathra) वहुक्षत्र गाथा (यस २) ओं में अविकल रूप से पाया जाता है। इसके प्रत्येक पद में '१४ अक्षर हैं। पंक्ति आसुरी में ११ अक्षर होते हैं ठीक उतने ही जितने कि हम उश्तवेति और स्पन्तामन्यु में पाते हैं। ❀

३—दोनों धर्म के अनुयायिओं का समान नाम "आर्य्य"

पाठकों को यह वताने की आवश्यकता नहीं कि जो लोग आज हिन्दू कहलाते हैं उनके पुरखा प्राचीन समय में आर्य्य § नाम से पुकारे जाते थे। परन्तु यह वात अधिक प्रसिद्ध नहीं है कि प्राचीन समय के पारसी लोग भी अपने को आर्य कहते थे।

आर्य शब्द ज़न्दावस्ता में अनेक स्थलों पर आया है कुछ प्रमाण हम उद्धृत करते हैं:—

"आर्यों की प्रतिष्ठा मे" (सिरोज़ह I, ९) ×

"आर्य्यों की प्रतिष्ठा मे जिन्हे मज़दा ने वनाया" (सिरोज़ह I, २५) †

' हम आर्य्यों के सन्मानार्थ हवन करते हैं जिन्हे मज़दा ने वनाया" (सिरोज़ह II, ९) ‡

❀ Haug's Essays p. 271-272.

§ वेदों के अनुकूल सब मनुष्यों के दो भेद हैं,
आर्य्य और अनार्य्य देखो ऋग्वेद १, १०, ५१, ८
''विजानीह्यार्य्यान् ये च दस्यवः

× Zend Avesta, Vol. II, p. 7

† Ibid p. 11

‡ Ibid p. 15

"आत्मा में [illegible] [illegible], [illegible]" [illegible]

"आत्मा के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]" [illegible] [illegible]—८) [4]

"[illegible] [illegible] [illegible]" [illegible]

"[illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पदार्थों [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] व्यापी को [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ज्ञान प्रदान करना है [illegible] [illegible] [illegible] है"

"[illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ने बनाया है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सकेगा, न [illegible], न [illegible] [illegible], न [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]" [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है

"[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पशु, [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

४—समाज का चतुर्विध विभाग ।

इस बात को स्वीकार करने में अब समस्त विद्वान् सहमत हैं कि जिस जन्म परक जाति भेद से वर्त्तमान हिंदूसमाज ने भयानक रूप धारण कर रक्खा है तथा जिसके कारण हिंदुओं का इतना अधिक अधःपतन और ह्रास हो चुका है वह वैदिक काल में प्रचलित न था और न वेद उसको आज्ञा ही देते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में मनुष्य समाज का वैदिक विधि से विभाग सर्वथा भिन्न वस्तु थी। उसका बिगड़ा हुआ रूप प्रचलित जाति-भेद है।

इस विषय में अधिक जानने के लिये ग्रन्थकार का लिखा 'जाति-भेद'* नामक पुस्तक पढ़ना चाहिये। संक्षेपतः प्राचीन वर्ण व्यवस्था वर्त्तमान जातिभेद से दो मुख्य बातों मे भेद रखती है।

१—वह मनुष्य मात्र को ४ समुदायों में विभक्त करती है, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वर्ण विभाग इससे आगे न बढ़ता। वेद और वैदिक साहित्य की अन्य पुस्तकों मे उन असंख्य उपजातियों का बिलकुल विधान न था जो अब प्रत्येक प्रधान जाति मे पाया जाता है। इसने समाज के अगणित टुकड़े कर डाले, जिसके कारण आपस का स्वतन्त्र व्यवहार कठिन हो गया है।

२—यह वर्णव्यवस्था जन्म से न मानी जाती थी, प्रत्युत वह योग्यता के ठीक और न्याय संगत सिद्धांत पर अवलम्बित थी। या यों कहिये कि यदि कोई मनुष्य ब्राह्मण की योग्यता प्राप्त कर लेता था, अर्थात विद्या, सत्यनिष्ठा और सदाचार पूर्वक पुरोहित, अध्यापक और धार्मिक पथ प्रदर्शक का का कार्य करता था, वह शूद्र कुल मे पैदा होने पर भी ब्राह्मण माना जाता था। यदि वह 'सैनिक कर्म' को पसंद करता था तो क्षत्रिय होता था उसके कुल का तनिक भी विचार नहीं

* जातिभेद—उसकी उत्पत्ति और वृद्धि उससे हानियाँ और उनके उपाय—आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रांत की ओर से प्रकाशित। मूल्य ॥)

किया जाता था और यदि [illegible]

से । [illegible]

होता था [illegible]

स्वर्गीय गुणों के [illegible]

था । [illegible]

कठिन था। जो [illegible]

[illegible]

मनुष्य समाज की यही चतुरंग वर्णव्यवस्था जन्दावस्ता में भी पाई जाती है। डाक्टर हॉग लिखते हैं—"ईरानियों की (जो हिंदुस्तानियों से इतनी घनिष्टता रखते हैं) धार्मिक पुस्तक जन्दावस्ता में स्पष्टतया वर्णों का उल्लेख है, केवल नामों का भेद है १–अथवा "पुरोहित" (संस्कृत अथर्वणा) २–रथेस्तो "योद्धा" ३–वास्त्रियोफ्श्या "कृषिकार" ४–हुइती (पहलवी–हुइतोखूश) कारीगर (मजदूर)—(यसन १६—१७ Werterj)।"❀

प्रो० डारमेस्टेटर जन्दावस्ता के अनुवाद मे लिखते हैं—

"हम उसमें (अर्थात् दिनकिर्त मे) चार वर्णों का वर्णन पाते हैं जो आश्चर्य के साथ हमे उस वर्णन का स्मरण दिलाता है जो ब्राह्मणों की पुस्तकों मे वर्णों की उत्पत्ति विषय मे है और जो निःसन्देह भारत वर्ष से लिया गया है।" †

हम जन्दावस्ता के प्रश्नोत्तरों से एक प्रमाण उद्धृत करते हैं :—

प्रश्न–मनुष्य की किन कक्षाओं के साथ—

उत्तर—"पुरोहित, रथारोहित (योद्धाओं का मुखिया), विधि पूर्वक भूमि जोतने वाला और शिल्पकार, जीवन की वे अवस्था और कक्षाएँ हैं जो शासकों के ध्यान देने योग्य हैं। ये उन धार्मिक नियमों की पूर्त्ति करती हैं जिनके द्वारा समाज की सचांई के क्षेत्र में वृद्धि होती है।"※

रीत हैं। इस विषय पर अधिक विस्तार से जानने तथा मन्त्रों की व्याख्या देखने के लिये ग्रंथकार कृत वैदिक मंत्र नं० १ (मनुष्य समाज) को पढिये, जिसको आर्यप्रतिनिधि सभा, संयुक्त प्रांत ने प्रकाशित किया है और एक आने में मिल सकता है।

❀ Quoted from Haug in Muir's Sanskrit Texts, Part II, p. 561.

† Zend Avesta part I. b. XXXIII (S.B.E.S,)

※ Zend Avefta part. I. P. XXXIII (S.B.E S.)

पारसी धर्म की [illegible] [illegible] में भी [illegible] [illegible] हैं। यद्यपि उनके नामों के पीछे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में लिखा है—है [illegible] ! ईश्वर [illegible] [illegible] विरुद्ध नहीं है। [illegible] [illegible] पर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। पारसियों [illegible] [illegible] पंचम [illegible] [illegible] है,—

[illegible] की [illegible] में [illegible] है [illegible] इस लिये [illegible] हैं कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है

[illegible] की [illegible] में [illegible] है [illegible] और [illegible] है कि [illegible], [illegible], [illegible] तथा [illegible] का [illegible] [illegible]

[illegible] की [illegible] में [illegible] की [illegible] हैं।

[illegible] की [illegible] में [illegible] [illegible] और [illegible] हैं। [illegible] कोई [illegible] [illegible] [illegible] हैं।

[illegible] की [illegible] [illegible] है [illegible] है कि [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] किया [illegible] है

[illegible] [illegible] [illegible]

इसी सम्बन्ध मे यह कथन करना भी मनोरंजक होगा कि वैदिक धर्म के अनुयायी द्विजों (अर्थात् पूर्व के तीन वर्णों) की भाँति पारसियों के लिये भी यज्ञोपवीत धारण करने का विधान किया गया है, जिसे वे 'कुश्ती' कहते हैं। हम वेन्दिदाद से निम्नलिखित प्रमाण देते हैं—

"ज़रदुश्त ने अहुरमज़दा से पूछा हे अहुरमज़दा ! किस अपराध के कारण अपराधी मृत्यु दण्ड पाने के योग्य होता है ? अहुरमज़दा ने कहा—'बुरे मत वा धर्म की शिक्षा देने से' हे स्पितामा ज़रदुश्त ! जो कोई तीन वसन्त ऋतुओं तक पवित्र सूत्र (कुश्ती) नहीं धारण करता गाथाओं का पाठ नहीं करता, पवित्र जल की प्रतिष्ठा नहीं करता इत्यादि।"※

पारसियों की किश्ती सातवें वर्ष मे होती है। वैदिक धर्म मे यज्ञोपवीत का समय आठवें वर्ष से आरम्भ होता है।

५—ईश्वर सम्बन्धी विचार।

ईश्वर के सम्बन्ध में वैदिक और जरदुश्ती शिक्षाओं में समानता दिखाने के पूर्व उन भ्रमों को दूर कर देना आवश्यकीय समझते हैं जो अब तक वेदोक्त ईश्वर के सम्बन्ध मे फैल रहे हैं।

वेदों पर प्रायः ये दोष लगाया जाता है कि वे बहुदेवोपासना, तत्व पूजा और प्रकृति पूजा आदि की शिक्षा देते हैं। यह दोषारोपण सर्वथा न्याय विरुद्ध है। इस भूल का कारण अग्नि, इन्द्र मित्र वरुण आदि वैदिक शब्दों के दो भिन्न अर्थों का मिश्रित करना है। वैदिक निर्वचन का यह प्राचीन और सुनिश्चित सिद्धान्त है, जिसका महत्व जितना ही अधिक समझा जाय उतना ही अच्छा है,† कि वैदिक शब्दों के यौगिक अर्थ लिये जाने चाहियें। इस प्रकार वेदों में जो शब्द व्यवहृत

※ वेन्दिदाद फर्गर्द १८

† इस विषय पर अधिक व्याख्या देखना हो तो पं० गुरुदत्त कृत Terminology of the Vedas and European Scholars नामक पुस्तक पढ़िये।

हुए हैं उनके दो अर्थ होते हैं और [illegible] उदाहरणार्थ 'इन्द्र' शब्द, जो 'इदि ऐश्वर्ये' धातु से [illegible] है [illegible] तीन अर्थों में प्रयुक्त होता है। [illegible] उसका प्रकाश, ऐश्वर्य या तेज युक्त होना है, [illegible] होते हैं जिनके अधिकार में संचालित ऐश्वर्य होता है [illegible] अर्थ [illegible] के होते हैं जिनका उल्लेख किया है। [illegible] सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में इस विषय की पूर्ण [illegible] गई है। उसमें ग्रन्थकार ने ऐसे बहुत से शब्दों के [illegible] अर्थों भली भांति सिद्ध किया है कि जब वे शब्द [illegible] प्रयुक्त होते हैं तो उन सबके [illegible] है। इन शब्दों में से कुछ, जो उसमें [illegible] जाते हैं:—

(इदि ऐश्वर्ये धातु से)

= (१) सूर्य (२) राजा (३) परमेश्वर।

[illegible]

= (१) [illegible] (२) [illegible] (३) [illegible] परमेश्वर

[illegible]

७—यम (यम उपरमे धातु से)
=(१) राजा (२) सबका शासक।

८—काल, (कल संख्याने धातु से)
=(१) समय (२) परमेश्वर जो सबकी गणना करता है।

९—यज्ञ; (यज देव पूजा सङ्गतिकरण दानेषु धातु से)
=(१) उपासना या आहुति देने की प्रक्रिया, (२) परमेश्वर जो पूजा के योग्य है।

१०—रुद्र, (रुदिर अश्रु विमोचने धातु से)
=(१) राजा जो दुष्टों का दमन करता है (२) ईश्वर जो दुष्टों को दण्ड देता है।

और भी शब्द हैं जो वेदों में साधारणतया ईश्वर के लिये प्रयुक्त होते हैं, परन्तु पाश्चात्य विद्वान अपने हृदयों पर पुराणों की कथा, वर्त्तमान समय के हिन्दुओं के मिथ्या भ्रम और मूर्त्ति पूजा का कुप्रभाव पड़ने के कारण बहुधा उन्हें विविध देवताओं के अर्थ में लेते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव प्रसिद्ध शब्द इसी प्रकार के हैं जो हिन्दुओं के देवालय में तीन प्रधान देवताओं के लिये आते हैं। सुविज्ञ पाठकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे विचार वेदों से सर्वथा बाहर हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती उपर्युक्त नामों की निम्न प्रकार व्युत्पत्ति और व्याख्या करते हैं:—

ब्रह्मा—(बृहि वृद्धौ धातु से) परमात्मा जो बड़ा है।

विष्णु—विष्—(विष्लृ व्याप्तौ धातु से) ईश्वर जो समस्त वस्तुओं में व्यापक है।

शिव—(शिव कल्याणे धातु से) ईश्वर जो सब भलाईयों का कारण है।

शंकर—का शब्दार्थ 'वह जो कल्याण करता है।'

महादेव—का शब्दार्थ 'देवों में बड़ा' है।

गणेश—का शब्दार्थ 'गणों का स्वामी' है।

ये समस्त शब्द एक ईश्वर [illegible] पुष्टि वेदों की आन्तरिक साक्षी से होती है। [illegible] उद्धृत करते हैं।

> इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः
> स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्राः
> बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
>
> (ऋ० [illegible])

उस एक [illegible] सत्ता [illegible] इन्द्र, [illegible] गुण, परमात्मा है विद्वान लोग बहुत से नामों से पुकारते हैं, [illegible] (ऐश्वर्य युक्त) मित्र (सब का सखा) वरुण ([illegible]) [illegible] (सब का उपास्य) यम (सब का शासक) मातरिश्वा ([illegible])

इसी वेद के दूसरे स्थान में कहा गया है,—

> सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।
>
> ([illegible])

विद्वान और बुद्धिमान पुरुष [illegible] अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं।

यजुर्वेद में फिर कहा गया है—

> तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः
> तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः
>
> ([illegible])

[illegible]

उपर्युक्त विचार की पुष्टि नीचे लिखी बाह्य साक्षी से भी होती है:—

कैवल्योपनिषद् में लिखा है:—

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः स शिवः सोऽक्षरः स परमः स्वराट् । स इन्द्रः स कालाग्निः स चन्द्रमाः ॥

कैवल्योपनिषद्

वह ब्रह्म (महान) है वह विष्णु (सर्वव्यापक) है, वह रुद्र (दण्ड देने वाला) है, वह शिव (सब आनन्द और भलाइयों का मूल) है। वह अक्षर (अविनाशी) है, वह सब से अधिक उच्च और सब से अधिक दीप्तिमान् है, वह इन्द्र (ऐश्वर्यवान्) है; वह कालाग्नि (पूजनीय और सब की गणना करने वाला) है, वह चन्द्रमा (आनन्द का देने वाला) है।

फिर मनुस्मृति में लिखा है:—

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुष परम् ॥
एतमग्नि वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम् ॥

मनु १२-१२२-२३

मनुष्य को चाहिये कि परमेश्वर को जाने, जो सब का शासक, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, प्रकाशयुक्त और केवल ध्यान द्वारा जानने योग्य है। कोई उसे अग्नि (पूजा के योग्य) कोई मनु (मनस्वी) कोई प्रजापति (सब प्रजा का स्वामी) कहता है, कोई उसे इन्द्र (ऐश्वर्यवान्) कोई प्राण (जीवन-मूल) और कोई उसे सनातन ब्रह्म कहता है।

इस विषय में भ्रम फैलाने का सब से अधिक प्रभावपूर्ण कारण 'देव' या उससे निकले हुये देवता शब्द का अशुद्ध अर्थ है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के 'देव' शब्द के शुद्ध अर्थ और विद्वत्ता पूर्ण व्याख्या करके सर्व साधारण को हलचल में डालने से पूर्व, यूरोप में संस्कृत के विद्वानों

करते हैं। "कोष हमें बतलाते हैं कि देव के अर्थ ईश्वर और देवताओं के हैं निस्सन्देह ऐसा है भी—परन्तु यदि हम वेदों के मन्त्रों मे देव शब्द का उल्था सदैव (God) परमेश्वर करें तो वह भाषान्तर न होकर वैदिक कवि के विचारों का रूपान्तर करना होगा। प्रारम्भ मे देव के अर्थ 'प्रकाशयुक्त' के थे। अतएव वह निरन्तर आकाश, नक्षत्र, सूर्य उषा, दिन, वसन्त ऋतु, नदी और पृथ्वी के लिये प्रयुक्त होता था और जब कोई कवि सब वस्तुओं को एक शब्द मे जिसे हम सामान्य संज्ञा कहते हैं वर्णन करना चाहता था तो वह उन सब को देव कहता था।"*

वे फिर लिखते हैं—"हमें कभी नहीं भूलना चाहिये कि प्राचीन धार्मिक गाथाओं में जिन्हे हम देवता कहते हैं, वे वास्तविक और जीवित व्यक्ति न थे जिनके विषय मे हम कह सके कि वे ऐसे या वैसे थे। देव जिसका अनुवाद कि हमने ईश्वर किया है केवल गुण वाचक संज्ञा है। वह ऐसे गुणों को प्रकट करता है जो अन्तरिक्ष और पृथ्वी में, सूर्य्य और नक्षत्रों में उषा और समुद्र में समान हैं अर्थात् प्रकाश।" †

इसलिये हम प्राचीन ऋषियों को केवल इस कारण कि वे ऊपर लिखे भौतिक पदार्थों को देवता के नाम से विशेषित करते हैं बहु ईश्वर वादी अथवा प्रकृति पूजक नहीं कह सकते। यदि हम ऐसा कहें तो उस मनुष्य को भी ऐसा ही कहना होगा जो सूर्य्य और चन्द्रमा को प्रकाश युक्त कहता है अथवा प्रकाश युक्त आकाश या चमकती हुई विजय आदि का वर्णन करता है।

यास्कमुनि जिनकी प्रमाणिकता वेद विषय पर सब से अधिक मानी जाती है और जो वैदिक कोष (निघण्टु) और वैदिक निर्वचन शास्त्र (निरुक्त) के सुप्रसिद्ध कर्त्ता हुये हैं। देव शब्द की व्याख्या और भी अधिक विस्तृत अर्थों में करते हैं।

---

* India: what can it teach us ? page 218.

† Ibid p. 160.

यास्क देव शब्द की इस प्रकार निरुक्ति करते हैं:—

देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा। निरुक्त ७ । १५ ।

जो हमें किसी प्रकार का लाभ पहुँचाता है, जो वस्तुओं को प्रकाशित कर सकता है या उन पर प्रकाश डाल सकता है और जो प्रकाश का मूल स्रोत (या स्थान) है वह 'देव' है।

अतएव देव शब्द अनेक और वस्तुओं के लिये प्रयुक्त होता है। हम यहाँ उनमें कुछ विशेष अर्थों का उल्लेख करते हैं —

(१) यह माता पिता के लिये प्रयुक्त होता है क्योंकि वे हमको [illegible] करते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में माता, पिता, आचार्य देव कहे गये हैं —

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव। तैत्तिरीय उपनि० अनु० ११।

२—यह विद्वानों के लिये भी आता है क्योंकि अनेक बातों का प्रकाश प्रगट करते हैं, अथवा वे अनेक बातों पर प्रकाश डालते हैं। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है "विद्वांसो हि देवाः"—विद्वान् ही देव हैं।

३—इसका इन्द्रियों के लिये भी प्रयोग किया जाता है, क्योंकि उनके द्वारा हमें भौतिक ([illegible]) जगत का ज्ञान होता है। उदाहरणार्थ यजुर्वेद में लिखा है।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्। यजु० अ० ४० मं० ४।

परमेश्वर एक है वह गतिशील नहीं तथापि उसकी गति मन से भी व्यापक है। यद्यपि वह पूर्व से ही इन्द्रियों में है तथापि इन्द्रियाँ (देव) उस तक नहीं पहुँच सकतीं। फिर मुण्डकोपनिषद् में कहते हैं —

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा। ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः॥ मुण्डक ३ । ८

परमेश्वर नेत्र या वाणी अथवा अन्य इन्द्रियों (देवों) के द्वारा नहीं जाना जाता और न तप वा कर्मों से प्राप्त होता है। प्रत्युत जो मनुष्य विशुद्ध भाव से उसका ध्यान करता है वह ज्ञान की शान्त ज्योति से उसका दर्शन करता है।

४—हमारे पाठकों में से बहुत से इस बात को जानते होंगे कि प्रत्येक वैदिक मन्त्र का देवता होता है। यूरोपीय संस्कृत विद्वान् इससे उस देवता विशेष का अर्थ लेते हैं जिसे उस मंत्र में सम्बोधित किया गया है। विविध मन्त्रों के विविध देवता होने के कारण यह कल्पना कर ली गई है कि वैदिक ऋषी बहुत से देवताओं को पूजने और सम्बोधन करने वाले थे परन्तु यह बहुत बड़ी भूल है। यास्कमुनि कहते हैं:—

अथातो दैवतं तद्यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां तद्दैवतमित्याचक्षते। सैषा देवतोपपरीक्षा यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामर्थ पत्यमिच्छन् स्तुतिम् प्रयुक्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति॥ निरुक्त ७। १

इसका यह भावार्थ है कि मंत्र के देवता से उस विषय का ग्रहण करना चाहिये जिसकी उसमें व्याख्या की गई है। "India: what can it teach us?" नामक पुस्तक में जिससे हम पूर्व भी उदाहरण दे चुके हैं। प्रो० मोक्षमूलर स्वीकार करते हैं कि—"यदि हम उन वस्तुओं को जिनका वर्णन वैदिक मन्त्रों में किया गया है देव या देवी कहते हैं तो हमें एक प्राचीन हिंदू धर्म वेत्ता (प्रकट रूप से उनका अभिप्राय यास्कमुनि से है) की बात स्मरण रखनी चाहिये कि मंत्र के देवता से निर्वाचित विषय के अतिरिक्त और कुछ अभिप्राय नहीं है।"❋

५—देव शब्द परमेश्वर के लिये भी आता है, जो सब वस्तुओं का प्रकाशक, समस्त प्रकाश और ज्ञान का मूल स्रोत और उन सब वस्तुओं का प्रदाता है जिनका हम संसार में उपभोग करते हैं, परन्तु उसका अर्थ

❋ India: what can it teach us? p. 147

नहीं [illegible] नहीं [illegible]। वस्तुतः [illegible] मानते हैं, वे शब्द, वस्तु [illegible] नहीं [illegible] इसका प्रयोग उन [illegible] वस्तुओं के [illegible] निर्जीव गुण [illegible] हैं [illegible], [illegible], [illegible], अथवा किसी वस्तु का [illegible] आदि।

अब पाठक [illegible] आकाश, वायु, पृथ्वी, [illegible] समझना चाहिये कि [illegible] । [illegible] पुरुष के पास [illegible] ।

वेदाहमेतं पुरुषं [illegible] तमसः [illegible]
[illegible] मृत्युमेति नान्यः पन्था [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥१॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥
यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहु कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥४॥
येन द्यौरुग्रा पृथ्वी च दृढ़ा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
योऽन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥५॥
यं क्रन्दसी अवसातस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसारेजमाने
यत्राधिसूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥
आपोह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधानाः जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्त्ततासुरेकः कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥७॥
यश्चिदापो महिनापर्यपश्यद् दक्षं दधानाः जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवानामधिदेव एक आसीत् कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥८॥
मानोंहिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवम् सत्यधर्माजजान ।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥९॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयोरयीणाम् ॥१०॥

ऋ० वे० मं० १० सू० १२ मं० १—१०।

आरम्भ काल में ईश्वर था जो प्रकाश का मूल है। अखिल विश्व का वही एक स्वामी था। उसी ने पृथ्वी और आकाश को स्थिर कर रक्खा

था। यहां है जिसकी हमें प्रार्थना करनी चाहिये।

जो आत्मज्ञान और बल का देने वाला है, संसार जिसकी पूजा करता है, जिसकी आज्ञा का पालन सब विद्वान लोग करते हैं, जिसकी शरण अमृत है, जिसकी छाया मृत्यु है उसी देव की हम उपासना करें।

जो अपनी महिमा से [illegible] का एक [illegible] राजा है, जो द्विपद और चौपायों का [illegible] और [illegible] उस देव की हम उपासना करें।

हिमवान पर्वत और [illegible] जिसकी [illegible] दिशाएं जिसकी भुजा हैं [illegible] की हम उपासना करें।

जिसने [illegible] आकाश [illegible]

[illegible]

[illegible]

हो रही थी, जो समस्त प्रकाश युक्त पदार्थों (देवों) का एक मात्र "अधिदेव है उसी देव की हम उपासना करें।

जो पृथ्वी का उत्पादक है और जिस सत्य नियम वाले ने आकाश को भी पैदा किया है और जिसने विस्तृत और प्रकाश युक्त उपादान का प्रादुर्भाव किया है, वह हमें दुःख न पहुंचावे, उसी देव की हम उपासना करें।

हे विश्व के स्वामी ! तेरे अतिरिक्त इन उत्पन्न हुए पदार्थों को वश मे रख कर शासित करने वाला कोई दूसरा नहीं है जिन वस्तुओं की कामना में हम तेरी उपासना करते हैं यह हमारी हों और हम संसार के समस्त उत्तम पदार्थों के स्वामी हों।

इन दस मंत्रों के सूक्त में 'एक' शब्द चार बार से कम व्यवहृत हुआ। यदि पाठक गण ईश्वर के अद्वितीय होने मे इससे अधिक स्पष्ट, असंदिग्ध, सुन्दर और प्रौढ़ वर्णन की खोज दूसरे धर्म ग्रन्थों मे करेंगे तो खोज निष्फल होगी।

जब कभी वेदों या उपनिषदों के एक या दो वाक्य जिन मे ईश्वर एकत्व का वर्णन होता है, पाश्चात्य विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं तो वे झट कह उठते हैं* कि ये 'अद्वैतवाद' की शिक्षा देते है, एक

उष्णता और शक्ति रखने वाला तथा 'जनयन्तीर्यज्ञम्, सृष्टि उत्पन्न करने वाले ये वाक्य जो इस मंत्र मे आये हैं और गर्भं दधानः विश्व को अपने गर्भ में धारण करने वाला, और जनयन्तीरग्निम्' अग्नि या आग्नेयवस्था को पैदा करने वाला-जो वाक्य इससे पूर्व के मंत्र मे आये हैं इनसे स्पष्ट प्रकट है कि 'आप' से यहाँ जल का अभिप्राय नहीं प्रत्युत उपादान कारण प्रकृति से है, जो सृष्टि से पूर्व परमाणुरूप से फैली रहती है। (जल को भी आप इसी कारण कहते हैं कि उनमें फैलने का गुण है)।

* उदाहरणार्थ मि० जे० मरडक Mr. J. Murdoch अपनी वैदिक हिन्दूइज़म (रीलीजन रिफ़ारम सीरीज़ तृतीय भाग) में कहते हैं:—अद्वैतवाद और बहु-ईश्वरवाद की शिक्षा का कभी कभी संमिश्रण कर दिया जाता है,

ईश्वरवाद की नहीं और इसका अर्थ यह है कि केवल एक ईश्वर है दूसरी कोई वस्तु नहीं, यह नहीं है कि परमेश्वर एक है दूसरा परमेश्वर नहीं अर्थात् ऐसे वाक्यों का अभिप्राय अद्वैतवाद पक्ष है। पक्ष ईश्वरवाद पक्ष नहीं। हमें खेद है कि मन्त्र के प्रकृत विषय के इस [illegible] नहीं जा सकते। हम इस बात का निर्णय पाठकों के ऊपर छोड़ते हैं कि इन मन्त्रों को जिनमें परमेश्वर को विश्व का निर्माता और धारण करने वाला, समस्त विश्व का एक मात्र राजा [illegible] की [illegible] करने वाला, अमरत्व का प्रदान करने वाला और इसकी पूजा के योग्य वर्णन किया गया है। किसी प्रकार भी अद्वैतवाद की शिक्षा देने वाला कहा जा सकता है? अब हम अथर्ववेद के कतिपय मन्त्रों को जो [illegible] में, अर्थ सहित नीचे उद्धृत करते हैं,—

यद्ये पार्थिवीष्ठाना अन्तरिक्षादि [illegible] ।
यस्मादन्न [illegible] देवा [illegible] ॥१॥

यस्मिन्तिष्ठन्ति [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] राजा [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥३॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
भूमिम् ॥ ४ ॥

[illegible]

सर्वं तद्राजा वरुणो विचष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात् ।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिवश्वघ्नी निमिनोति तानि ॥ ५ ॥

येते पाशा वरुण सप्त सप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः ।
छिनन्तु सर्वे अनृतम् वदन्तः यः सत्य वाद्यति तं सृजन्तु ॥ ६ ॥

अथर्व कां० ४ सू० १६ ॥

इन सब का अधिष्ठाता वरुण॰ ऐसे देख रहा है, मानो वह समीप है, यदि कोई मनुष्य खड़ा होता है, चलता है, छिपता है, या लेटने को जाता है, वा उठता है या दो मनुष्य परस्पर कानाफूसी या मन्त्रणा करते हैं तो राजा वरुण उसे जानता है, वह तीसरा वहां उपस्थित है। १—२

'यह पृथिवी तथा विस्तृत आकाश जिसके सिरे बहुत दूर हैं राजा वरुण के अधिकार में है। दोनों समुद्र (आकाश और समुद्र) वरुण की कुक्षी हैं और वह पानी के इन छोटे से बिन्दू में भी व्याप्त है।

यदि कोई पुरुष आकाश से भी बहुत परे भाग जाय तो भी वह राजा वरुण से नहीं बच सकता ।३।

उस के गुप्तचर आकाश से संसार की ओर आते हैं और सहस्रों नेत्रों से इस पृथ्वी पर दृष्टिपात करते हैं ।४।

राजा वरुण उन सब को देखता है जो आकाश और पृथिवी के मध्य में है। आकाश इनसे भी परे है। उसने मनुष्यों के नेत्रों के पलक मारने की भी गणना करली है। खिलाड़ी के पांसा फैंकने के समान उसने समस्त वस्तुओं को अखण्ड रूप से स्थित कर रखा है। ५।

हे वरुण! तेरे भयानक पाश जो सात सात और तीन-तीन करके

॰ ईश्वर के नामों में से एक नाम जिसके अर्थ महान् और सर्वोत्तम हैं।

फँसे हुये हैं मिथ्यावादियों के [illegible]
छोड़ देवें । ६ ।

अब यह स्पष्ट हो गया कि वेद विरुद्ध और [illegible]
शिक्षा देते हैं जो [illegible]
ईश्वर के मानने वाले [illegible]
[illegible], ईसाई और [illegible]
[illegible]

[illegible]

प्रत्येक प्रकार के जानवरों का एक जोड़ा रखने की आज्ञा देता है। जब जल बाढ़ समाप्त हो जाती है तो नूह उसके लिये अग्नि में आहुति देता है और ईश्वर 'सुगन्धि सूंघता है' और अब पूर्वापेक्षा अधिक शान्त अवस्था में होने के कारण अपने किये पर प्रकट रूप से पश्चात्ताप करता हुआ कहता है:—

'मनुष्य के लिये फिर मैं कभी पृथ्वी को न धिक्कारूँगा ? क्योंकि मनुष्य के हृदय की कल्पना लड़कपन के कारण बुरी होती है (मानो वह पूर्व इस बात से अभिज्ञ ही न था) और जैसा कि मैंने कहा है फिर प्रत्येक जीवधारी को न नष्ट करूंगा।'*

यह चित्र है जो बाइबिल में ईश्वर का खींचा गया है कुरान इस दुर्गति की—जो बाइबिल में ईश्वर की हुई है और भी अधोगति कर देता है। उसमें ईश्वर की तसवीर इस ढंग की खींची गई है मानो वह एक बिलकुल स्वेच्छाचारी सम्राट् है और वह भी अच्छे स्वभाव का नहीं। वह उस सिंहासन पर बैठता है जिसे अर्श मुअल्ला 'पर आठ फ़रिश्ते धारण किये हुए हैं।† वह काफ़िरों को शाप देता‡ तथा उनसे युद्ध ठानता है और अपने अनुयायियों को भी वैसा ही करने का आदेश देता है§। वह ऐसी कड़ी शपथें खाता है जिनको खाना अपनी प्रतिष्ठा का विचार रखने वाले बहुत ही कम लोग पसन्द करेंगे$। वह अपने आपको 'माकर' कहने तक नहीं हिचकता‖। जिस प्रकार उसकी शक्ति असीम

---

* देखो बाइबिल उत्पत्ति का पुस्तक अ० ४, आयत ८–६ १४–१६। अ० ६, आयत ६, ७, १३–२२। अ० ८ आ० २१।

†कुरान अध्याय ६६

‡कुरान अध्याय २

§कुरान अध्याय ४७

$कुरान अ० ३७, अ० ४२, अ० ७६, अ० ६१

‖कुरान अ० ८

है वैसे ही उसकी महान [illegible]
है—'ईश्वर जिसे चाहता है [illegible]
उसे सत्पथ की ओर प्रेरित करता है।'

दूसरा दोष जिसके प्रति [illegible]
वाख्या इंजील व कुरान के ईश्वरवाद [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] किया जाता है [illegible]
और भलाई और बुराई के [illegible]
शैतान के लिये [illegible]
[illegible] (दुष्ट विचार) [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible] के पवित्रता और [illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

और जो कुछ यहाँ ईश्वर के सम्बन्ध में कथन किया गया है वह धर्म के अन्य महत्त्व पूर्ण विचारों के सम्बन्ध में भी यथार्थ है, क्योंकि परमेश्वर का विचार उन चारों मतों का मूल सिद्धान्त है जिनके विषय मे हम यहाँ लिख रहे हैं। धर्म रूपी नदी की धार अपने उद्गम स्थान के निकट स्वच्छ होती है, जहाँ वह आकाश से गिरने वाले अत्यन्त श्वेत हिम से निकलती है। परन्तु जब वह नीचे आकर घाटियों और मैदानों मे बहती है जहाँ उसमे किनारों की ज़मीन से आने वाला पानी मिल जाता है तो वह क्रमशः सर्वोत्तम प्रारम्भिक पवित्रता को खो बैठती है। उसके न्यूनाधिक गँदले पानी से भी प्यासों के सूखे होंठ शीतलता का आस्वादन करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य के लिये बिलकुल जल न मिलने की अपेक्षा ऐसे जल का प्राप्त हो जाना भी उत्तम है। परन्तु क्या इस मैले जल की उस विशुद्ध निर्मल जल से तुलना हो सकती है जो आकाश से गिरे हुये हिम से बिना पार्थिव परिमाणुओं के मल के निकल कर बहता है। ईश्वर ऐसा करे कि हम उस स्रोत के समीप पहुंचें और अपनी आत्मिक तृष्णा बुझाने के लिये उसके स्वर्गीय जल का पान करें। तथास्तु!

ऊपर के लेख मे पाठकों को ईश्वर-सम्बन्धी वैदिक शिक्षा का कुछ ज्ञान होगा। चतुर्थ अध्याय मे यह दिखाया गया है कि ईश्वर के सम्बन्ध मे जरदुश्त का क्या विचार था। पाठक सुगमता से देख लेंगे कि (उपर्युक्त दो दूषणों को छोड़ कर) अहुरमज़दा का विचार वेदोक्त परमेश्वर के विचार से पूरी समानता रखता है। केवल दोनों में ही समानता हो सो बात नहीं प्रत्युत वेदों में जो नाम ईश्वर के लिये प्रयुक्त हुये हैं उनमे से बहुत से शब्द ज़न्दावस्ता मे भी व्यवहृत हुये हैं। स्वयं अहुरमज़दा शब्द ही ऐसा है जो अवस्ता मे ईश्वर के लिये अनेक बार आया है। यह शब्द वैदिक असुरमेधः* से समानता रखता है। इसी प्रकार के निम्न लिखित शब्द भी हैं:—

---

* इसी अध्याय के अंश १ में असुर शब्द पर फुट नोट देखो ?

[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
मित्र	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]

इनमें भी [illegible] वेदों के [illegible]

"दोनों धर्मों व ग्रंथों के [illegible] और साथी .... और [illegible] ईश्वर [illegible] करते हैं।"

[illegible]

[illegible] ईश्वर और [illegible]

[illegible]

[illegible]

है, (देखो वेन्दिदाद २२)। वेद मंत्रों मे इसी पद पर हम अग्नि और पूषण को पाते हैं। इस शब्द के अर्थ हैं "जो मनुष्यों से प्रशंसा किया गया हो" अर्थात् प्रसिद्ध। नाराशंस (१) ईश्वर और (२) अग्नि इन अर्थों में आता है। पिछले अर्थ में नाराशंस या नियोसंह दिव्य सन्देश-वाहक या दूत* कहाता है। क्योंकि अग्नि या अधिक समुचित शब्दों में उष्णता द्वारा जल वाष्प और अन्य पदार्थों के रस एक स्थान से दूसरे को जाते हैं। इसलिये अग्नि या उष्णता को प्रकृति या उसके स्वामी ईश्वर का दूत कह सकते हैं।

अंश ६—३३ देवता

हमारे कुछेक पाठकों ने वेदों के ३३ देवताओं के सम्बन्ध में सुना होगा कि जब भारतवर्ष में अवनत होते हुये वैदिक धर्म ने बहु ईश्वरवाद का स्वरूप धारण कर लिया तो कदाचित् ये ३३ देवता ही बढ़ते-बढ़ते हिन्दू देवालय के ३३ कोटि देवता बन गये। वेदों के ३३ देवता क्या थे ? क्या वे ईश्वर थे ? कदापि नहीं। पण्डित गुरुदत्त की Terminology of the Vedas नामक पुस्तक मे जो इस विषय की व्याख्या की गई है वह इतनी स्पष्ट और सुन्दर है कि हम उसका विस्तार पूर्वक यहाँ अनुवाद देते हुये क्षमा याचना की आवश्यकता नहीं समझते।

हम देख चुके हैं कि यास्क मुनि उन चीजों के नामों को (मंत्रों का) देवता कहते हैं, जिनके गुण मंत्रों में वर्णित हैं तो फिर देवता क्या पदार्थ है ? वे समस्त वस्तुएँ जो मानवी ज्ञान का विषय हो सकती हैं, मनुष्य का सारा ज्ञान देश और काल इन दो बातों से घिरा हुआ है। हमारी कारण कार्य्य अभिज्ञता विशेषत: घटनाओं का क्रम, यह क्रम क्या है ? केवल समय में घटनाओं का नियम से संगठित होना फिर हमारा ज्ञान किसी वस्तु का ज्ञान होना चाहिये उस वस्तु के लिये किसी

---

* देखो यजुर्वेद २२, १७ जिसमें अग्नि या गरमी को दूत कहा गया है—

अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवान् आसादयादिह ॥ यजु० २२।१६।

[illegible] का [illegible] है । [illegible]
परिस्थिति [illegible] और [illegible] है । [illegible]
में विचार करते हैं । [illegible]
[illegible] है । [illegible]
ज्ञान [illegible] है । [illegible]
लोग इस [illegible] पर [illegible] हैं कि [illegible]
[illegible] का [illegible]
[illegible] (१) [illegible]
[illegible] नहीं [illegible] । [illegible] प्रकृति के [illegible]
[illegible], [illegible] ज्ञान [illegible] है । इस प्रकार [illegible]
[illegible] परिवर्तनों [illegible] है, [illegible]
[illegible] है । [illegible]
आत्मा [illegible] है । [illegible]
आत्मा को ज्ञान [illegible] है, [illegible]
आत्मा व [illegible]
ज्ञान [illegible] है और [illegible]
[illegible]
[illegible] है । [illegible]
[illegible] है ।

इस [illegible]
[illegible] है, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] । [illegible]

[illegible]

त्रयस्त्रिंशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठ्याधिपतिरासीत् । यजुर्वेद १४ । ३१

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अंगे गात्राविभेजिरे । तान्वै त्रयस्त्रिंशद्देवा नेके ब्रह्मविदो विदुः । अथर्व० १९।४।२७

सबका स्वामी, विश्व का नियन्ता, सब को स्थिर रखने वाला ३३ देवताओं द्वारा सब वस्तुओं को ग्रहण किये हुये हैं ॥१॥ सभी ब्रह्म विद्या को जानने वाले ३३ देवताओं को मानते हैं जो अपने-अपने कर्मों को यथा विधि करते हैं।

अब हम विचार करते हैं कि ये ३३ क्या हैं, जिससे हम अपनी पूर्व विवेचना से तुलना कर सकें और इस समस्या की पूर्ति कर सकें।

शतपथ ब्राह्मण में लिखा है :—

सहोवाच महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिंशत्त्वेव देवाइति । कतमे ते त्रयस्त्रिंशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति ॥ ३ ॥ कतमे वसव इति । अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदं सर्वं वसुहित मेते हीदं ॐ सर्वं वासयन्ते तद्यदिदं सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति ॥ ४ ॥

कतमे रुद्रा इति । दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदास्मान् मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ॥ ५ ॥

कतम आदित्या इति । द्वादश मासाः संवत्सरस्यैता एते हीदं ॐ सर्वमाददानायन्ति तद्यदिदं ॐ सर्व माददानायन्ति तस्मादादित्या इति ॥ ६ ॥ कतम इन्द्रः कतमः प्रजापति रिति । स्तन

[illegible]

इनमें से [illegible]

[illegible]

([illegible]
पृष्ठ ११)

[illegible]

[illegible]

[illegible]

विविध पदार्थों को शिल्प कला सम्बन्धी उद्देश्य पूर्ति के लिये इच्छा-पूर्वक एकत्र करना अथवा अन्य पुरुषों के साथ अध्ययन वा अध्यापन के लिये सहयोग करना) उसके अर्थ पशु (उपयोगी जानवरों) के भी हैं। यज्ञ और उपयोगी पशु प्रजापति इस लिये कहाते हैं कि ऐसे कार्यों और पशुओं से ही संसार साधारणतया अपनी स्थिति की सामग्री ग्रहण करता है। शाकल्य ऋषि पूछते हैं कि ३ देवता कौनसे हैं। याज्ञवल्क्य जी उत्तर देते हैं कि वे तीन लोक हैं (अर्थात् स्थान, नाम, और जन्म) उन्होंने पूछा कि दो कौनसे हैं। याज्ञवल्क्य ने कहा कि प्राण (संयोजक पदार्थ) और अन्न (विभाजक पदार्थ)। वह पूछते हैं अध्यर्द्ध क्या है ? याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं कि वह विश्व की पालन करने वाली विद्युत् है, जो संसार की स्थिति स्थिर रखती तथा सूत्रात्मा कहाती है। अन्त में उन्होंने पूछा कि एक देव कौनसा है ? याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं कि एक उपासनीय परमेश्वर है।

इन ३३ देवताओं का वेदों मे वर्णन है। अब हमें यह देखना चाहिये कि यह व्याख्या हमारी पूर्व कृत विवेचना से कहाँ तक मिलती है। शत-पथ के गिनाये हुए ८ वसु स्पष्ट रूप से स्थानों (वा देश) के नाम हैं। ११ रुद्रों में प्रथम आत्मा है और दूसरे १० प्राण हैं। १२ आदित्यों में काल आ जाता है। विद्युत् वह शक्ति है जो सब में व्याप्त है और प्रजापति (पशु और यज्ञ) मे हम साधारण दृष्टि से आत्मा चेष्टित कर्मों को सम्मिलित मान सकते हैं।

इस प्रकार ३३ देवता हमारी स्थूल विवेचना के ६ तत्त्वों से मिल जाते हैं, क्योंकि यहाँ विस्तार की यथार्थता दिखाने से हमारा अभिप्राय नहीं है जितना साधारण समानताओं का दिखाना इष्ट है। अतएव आंशिक भेद त्यागा जा सकता है।*

डाक्टर हॉग कहते हैं कि "वेदों के इन ३३ देवताओं की जन्दावस्ता

---

* देखो पं० गुरुदत्त कृत Terminology of the Vedas and Europeon Scholars.

(याज्ञ ? । ३०) के ३३ वसुओं के [illegible] [illegible] स्थान पर ३३० [illegible] लिखते हैं [illegible] गणना के सम्बन्ध में [illegible] [illegible]

जन्दावस्था से यह प्रकट नहीं होता कि [illegible] के यथार्थ को जानने [illegible] [illegible] कि जन्दावस्था में उनके पृथक् पृथक् [illegible] नहीं गिनाया गया, जैसा वेदों में ३३ देवताओं [illegible] अब हम दृढ़ निश्चय के साथ यह [illegible] ईश्वरीय सत्ताओं की गिनती [illegible] जो प्राचीन होने के [illegible] वास्तविक अर्थ [illegible] ज्ञात रहे।"[२]

७—सृष्टि-उत्पत्ति ।

प्रकृति और जीवात्मा का अनादि [illegible]

सृष्टि [illegible]

यह [illegible] का प्रबल [illegible]

बौद्ध [illegible] का [illegible] प्रारम्भ [illegible] दशा में [illegible] दशा के [illegible] वैज्ञानिक लोग [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

तप्त हुई थी। और वे यह भी बतलाते हैं कि यद्यपि भूगोल का बाहरी परत शीतल और ठोस हो गया है तथापि उसके भीतर अब भी बहुत गरमी है, जैसा कि इस घटना से प्रकट है कि ज्वालामुखी पर्वतों से जो वस्तुएँ भूगर्भ के बाहर निकलती हैं वे सामान्यतः तप्त होती हैं। हमें यह भी बतलाया गया है कि जल वा तई हुई अवस्था मे आने से पूर्व पृथ्वी सूर्य्य के समान एक अग्नि का गोला थी और उससे भी पूर्व वह वायु-रूप Gaseous State में थी। वस्तुतः जब पृथ्वी इतनी उष्ण होगी तब न तो उस पर कोई जीवधारी रह सकता था और न वनस्पति ही उग सकती थी।

जिन विविध अवस्थाओं में पृथ्वी को अपने विकास चक्र मे होकर निकलना पड़ा है और जिसे पाश्चात्य विज्ञान द्वारा हाल ही मे जाना गया है उसका वर्णन प्राचीन वैदिक साहित्य मे पूर्व ही किया जा चुका है। आधुनिक विज्ञान वायु अवस्था पर ही ठहर जाता है परन्तु हमारे शास्त्र उससे भी एक पग पीछे जाते हैं और एक पाँचवीं अवस्था का वर्णन करते हैं, जिसका नाम आकाश है जो वायु से भी अधिक सूक्ष्म है और किसी ग्रह वा खगोल के विकास की प्रथम अवस्था है। तैत्तिरियोपनिषद् में लिखा है:—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। तै० - उपनि० ब्रह्मानन्दीवल्ली अनुवाक २।

जिस समय परमात्मा ने विश्व की रचना प्रारम्भ की सब से पूर्व आकाश हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधि, औषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य्य और वीर्य्य से पुरुष हुआ।

विज्ञान हमें यह भी बतलाता है कि सूर्य्य की उष्णता दिन-प्रतिदिन

हो सकती। प्रकृति और जीवात्मा निर्लेप एवं तात्विक वस्तु हैं। वे किसी और वस्तु से मिल कर नहीं बने, न वे अभाव से उद्भूत हुए। अतएव वे अनादि पदार्थ हैं जो सदैव रहते हैं और जिनका कभी अभाव नहीं होता। *

इस प्रकार वैदिक तत्ववाद ३ पदार्थों को अनादि मानता है अर्थात् ईश्वर, जीव और प्रकृति। ऋग्वेद में यह बात भली भाँति स्पष्ट की गई है:-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिपलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

ऋ० वे० मं० १६४ मं० २०।

जैसे दो समान आयु वाले और मित्रता युक्त पक्षी एक वृक्ष पर बैठते हैं इसी प्रकार दो अनादि और मित्रता युक्त आत्मा (अर्थात् जीवात्मा) और परमात्मा अनादि प्रकृति मे रहते हैं। इन दोनों मे से एक (अर्थात् जीवात्मा) इस प्रकृति रूपी वृक्ष के फल को चखता है (अर्थात् दु:ख सुख भोगता है जो भौतिक शरीर मे बँधने का परिणाम है) और दूसरा (अर्थात् परमात्मा) इसके फल को न खाता हुआ (अर्थात् दु:ख सुख न भोगता हुआ) सब कुछ देखता हुआ प्रकाश-मान् हो रहा है।

इस सिद्धांत के विरुद्ध बहुधा यह आक्षेप किया जाता है कि इसका

---

* साधारणतया यह आक्षेप किया जा सकता है कि यह शिक्षा परमेश्वर की सर्व शक्तिमत्ता को परिमित करती है, परन्तु यह निर्बल और अनुचित है। यदि कोई यह आपत्ति उठा सकता है कि परमेश्वर सर्व शक्तिमान नहीं है क्योंकि यह अभाव से भाव को उत्पन्न करने की शक्ति नहीं रखता तो यह भी कहा जा सकता है कि परमेश्वर सर्व शक्तिमान नहीं है क्योंकि वह दो और दो पाँच नहीं कर सकता। अथवा चतुष्कोण वृत्त नहीं बना सकता। सर्व शक्तिमत्ता का यह अर्थ नहीं है कि वह उसके करने की भी योग्यता रखता हो। जिसका होना असम्भव है।

अर्थ तीन अथवा एक से अधिक ईश्वर में विश्वास रखना है। यह आक्षेप इतना दुर्बल है कि उसका गम्भीरता पूर्वक खण्डन करने की आवश्यकता नहीं। तीनों पदार्थों में अनादित्व समान है। परन्तु और गुण ऐसे नहीं जो सबके लिये एक से हों। प्रकृति वास्तव में जड़ और [illegible] है परन्तु ईश्वर और जीव चेतन हैं। ईश्वर और जीव में भी ईश्वर [illegible] और जीव परिमित है। ईश्वर समस्त आकाश में भरा हुआ और सम्पूर्ण वस्तुओं में व्यापक है जीवात्मा एक छोटे से शरीर में व्यापक है। जीवात्मा एक छोटे से शरीर में बन्धा हुआ है। ईश्वर [illegible] है परन्तु जीव उसके आधीन है। ईश्वर सर्वज्ञ है, किन्तु जीव [illegible]। ऐसी दशा में क्या यह आक्षेप हो सकता है कि यह प्रकृति और जीव को ईश्वर मानने के समान है। क्या ईश्वरत्व अनादित्व का पर्याय है? क्या परमेश्वर का गुण केवल अनादित्व ही है?

ईश्वर संसार का मूल कारण और प्रकृति उसका उपादान कारण है। ये दोनों अनादि हैं और इसी प्रकार जीव भी।

परन्तु यह सृष्टि जिसमें हम रहते हैं अनादि या अनन्त नहीं है, जैसा कि बौद्धों का विचार था। इसका प्रारम्भ हुआ है और अन्त भी होगा जितने समय तक यह सृष्टिस्थित रहती है उसका नाम [illegible] है और [illegible] संसार रूप से उसको [illegible] भी कहते हैं। यह [illegible] साधारण वर्षों का [illegible] होता है। इस सृष्टि के पूर्व और [illegible] इतना ही बड़ा समय [illegible] जिसमें [illegible] में पड़ा रहता है [illegible]। [illegible] आने का नाम [illegible] और फिर [illegible]। [illegible] रूप में [illegible] कहाता है।

[illegible] से सृष्टि उत्पत्ति [illegible] जाना दोनों ही [illegible] हैं। इस सृष्टि के [illegible] कारण पलीन अवस्था में था और [illegible]

सृष्टि से पूर्व फिर वही प्रलीन दशा और दशा से पूर्व फिर सृष्टि निदान अनादि काल से ऐसा ही क्रम चला आता है। इसी प्रकार वर्त्तमान सृष्टि की भी दशा होगी। इसके पश्चात् प्रलय होकर फिर सृष्टि रची जायगी और यही क्रम अनन्त काल तक चला जयगा। जिस प्रकार दिन के बाद रात्रि और रात्रि के पश्चात दिन आता है उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का अनादि अनन्त चक्र सदा चलता रहता हैं।

पाठकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि परमेश्वरके साथ जीव और प्रकृति को अनादि मानना तथा सृष्टि क्रम को प्रवाह से अनादि समझना आर्य्य तत्व ज्ञान का प्रधान सिद्धान्त हैं। सेमी मत (अर्थात् यहूदी, ईसाई और मुहम्मदी मत) इसके विपरीत शिक्षा देते हैं। उनके मतानुसार यह सृष्टि सब के प्रथम और अन्तिम है। वह एक विशेष समय पर अभाव से उत्पन्न हुई और जब प्रलय का समय आवेगा फिर अभाव को प्राप्त हो जायगी; परन्तु इस सर्वनाश में आत्माएँ बची रहेंगी। कुछ उनमें से स्वर्ग को भेज दी जावेंगी और कुछ नरक को जहाँ वे अपने कर्मानुसार अनादि काल तक रहेंगी।

यह बात कि कोई वस्तु अभाव से सत्तावान हो सकती है फिर अभाव में परिणत हो सकती है, न केवल बुद्धि, विज्ञान के विरुद्ध है प्रत्युत उसके मानने वालों को अनेक कठिन प्रश्नों का सामना करना पड़ेगा जैसे परमेश्वर इस विश्व को एक विशेष समय पर क्यों अभाव से भाव में लाया और फिर वह उसे क्यों एक नियत अवधि के पश्चात् नष्ट कर देगा? अपने शान्त अस्तित्व में परिवर्त्तन करने की ओर उसे किसने प्रेरणा की? जिस समय विशेष पर सृष्टि उत्पन्न की गई उससे पूर्व उसे उसके पैदा करने की इच्छा क्यों न हुई? हमारे जो मित्र उपर्युक्त सिद्धान्तों को मानते हैं वे इन और ऐसे ही अन्य प्रश्नों के उत्तर में केवल यही कह देते हैं कि ये 'रहस्य' हैं। इस 'रहस्य' शब्द ने इन मतों की बहुत त्रुटियों को आच्छादन करने में सहायता मिलती है। वैदिक फिलॉसफी की दृष्टि से

न तो यह प्रश्न उठते हैं और न उठ सकते हैं। क्योंकि ऐसा कोई [illegible] था जब पहले पहल ईश्वर ने सृष्टि की रचना की। [illegible] हैं कि ऐसी सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व और [illegible] पश्चात परमेश्वर में उन गुणों का सिद्ध करना [illegible] सामान्यतः उसके सम्बन्ध में कहे जाते हैं। इस सृष्टि से पूर्व [illegible] कैसे कहा जा सकता था, जब उसने इस संसार [illegible] उत्पन्न ही नहीं की थी और उसे सर्वज्ञ कैसे [illegible] दूसरी वस्तु ही उपस्थित न थी जिसको वह जाने। [illegible] कह सकते हैं क्योंकि जब कोई जीव ही न थे तो [illegible] करता। वह दयालु भी नहीं हो सकता क्योंकि [illegible] वह दया दिखाता और फिर इस बात को नहीं [illegible] समय जब से यह सृष्टि स्थित है या जब तक [illegible] सामने बहुत ही कम प्रत्युत कुछ भी नहीं है। [illegible] सामने जिसका वह अंश है कुछ परिमाण [illegible] होने वाले समय का चाहे वह कितना ही लम्बा हो, [illegible] के सामने कुछ भी परिमाण नहीं हो सकता। [illegible] परमेश्वर को निर्विकार भी नहीं कह सकते, [illegible] नहीं है कि जिन जीवों का आदि है उनका अन्त [illegible]

परन्तु हम मूल विषय को छोड़ कर [illegible] हमारा उद्देश्य यह सिद्ध करना नहीं है कि वैदिक सिद्धान्त [illegible] हैं प्रत्युत हमारा उद्देश्य वैदिक शिक्षा और [illegible] सम्बन्ध दिखलाना है। यह सिद्ध [illegible] ग्रन्थों में वे शिक्षाएँ पाई जाती हैं [illegible] सामान प्रधान ने लिखा है —"ईश्वर, [illegible] और अनन्त है।"

उपर्युक्त वचन की टीका करते हुए [illegible] ग्रन्थों का [illegible]

अखण्डनीय सिद्ध करना है और फिर लिखता है:—

"इसके पश्चात् मैं कहता हूँ कि आत्मा अनादि और अनन्त है; क्योंकि प्रत्येक उत्पन्न हुई वस्तु से पूर्व उसका उपादान कारण (जिससे वह पैदा हुई) होना आवश्यकीय है। इस प्रकार यदि आत्माएँ अनादि और अनन्त नहीं हैं तो वे प्राकृतिक होनी चाहिएँ, जिसका हम पूर्व ही खण्डन कर चुके हैं"। यही युक्ति उपादान कारण के अनादित्व और अनन्तता सिद्ध करने के लिये दी जा सकती है।

सृष्टि और प्रलय के चक्र की शिक्षा का वर्णन भी स्पष्टतया किया गया है। पारसी धर्म ग्रन्थों में सृष्टि को (उसके पश्चात् होने वाले प्रलय सहित) "मिहचर्ख" कहा गया है, जो संस्कृत के महा चक्र से निकला है। हम सासान प्रथम में पाते हैं:—

"मिह्चर्ख" के आदि में सृष्टि के बनने का कार्य्य नवीन प्रकार से प्रारम्भ होता है। रूप, क्रिया और ज्ञान जो इस मिहचर्ख में प्रादुर्भूत होते हैं वे सर्वथा वैसे ही होते हैं जो पूर्व के मिहचर्ख मे प्रकट हो चुके हैं। प्रत्येक भावी मिहचर्ख आदि से अन्त तक अपने पूर्व के मिहचर्ख के सदृश होता है।

उपर्युक्त लेख पर सासान पंचम निम्न लिखित टीका करता है:—

"मिहचर्ख के आदि तत्वों का मिलना आरम्भ होता है और उस समय जिन वस्तुओं का प्रादुर्भाव होता है वे वचन और कर्म मे पूर्ववर्त्ती मिहचर्खों के समान ही होती हैं, परन्तु सर्वथा वे ही नहीं होतीं।"

इसके साथ ऋग्वेद के निम्नलिखित मन्त्र की तुलना की जा सकती है:—

ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्य्या चन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्ष मथो स्वः॥

ऋ० मं० १० सूत्र १९०। १

सृष्टि विकास से पूर्व—ईश्वर ने अपने ज्ञान और [illegible] से प्रथम अनादि उपादान कारण को प्रकट किया। [illegible] थी उसके पश्चात् आकाश वा अन्तरिक्ष की स्थापना की। [illegible] स्थापित करके सांवत्सरिक गति पैदा की गई। फिर संसार [illegible] करने वाले परमात्मा ने दैनिक गति की उत्पत्ति की [illegible] दिन होते हैं। संसार के धारण करने वाले ने सूर्य, चन्द्रमा, [illegible] तथा आकाश के अन्य नक्षत्रों को [illegible] इसी प्रकार कि उसने पूर्व कल्प में रचा था।

पारसी धर्म ग्रन्थों में सृष्टि उत्पत्ति विषय [illegible] पूर्वक नहीं लिखी गई जैसी कि वैदिक [illegible] प्रमाण सिद्ध करते हैं कि पारसी [illegible] की गई। पिछले अध्याय में चतुर्थ [illegible] हैं कि विविध वस्तुओं, आकाश, [illegible] रचना का जो क्रम [illegible] वर्णन यजुर्वेद में आया है। सृष्टि उत्पत्ति [illegible] कि पैदायश की किताब में प्रथम [illegible] का अनुकरण मात्र है, परन्तु [illegible] अंश लिया। यह [illegible] सृष्टि से आगे नहीं जाने दिया [illegible] का पृष्ठ उठाया कि इस संसार से पूर्व [illegible] नहीं, इसलिए [illegible] न यह प्रकट किया है कि [illegible] संसार [illegible] पूर्व ही से [illegible] था। [illegible] संसार शून्य से [illegible] गया, कोई स्पष्ट वर्णन नहीं है। [illegible] बात है कि 'फिर' शब्द द्वारा [illegible]

प्रारम्भ में ही आया है और जिसका अनुवाद "उत्पन्न हुआ" किया गया है, शुद्ध अर्थ "काटा गया, किसी में से काट कर बनाया गया" है। इससे सिद्ध होता है कि पैदायश की किताब का कर्त्ता कदाचित उपादान कारण की सत्ता में विश्वास रखता था। पीछे जैसे-जैसे लोग वैदिक शिक्षा के मूल तत्व को भूलते गये, वैसे-वैसे सामी मतों का यह विश्वास दृढ़ हो गया कि यह संसार सब से पहिला और सब से पिछला है और वह अभाव से पैदा हुआ तथा फिर भी सत्ता हीन हो जायगा। हम यह पूर्व ही बता चुके हैं कि यह अनुमान कितना अयुक्त और विज्ञान विरुद्ध है।

अब यह सुलभता पूर्वक सिद्ध हो जायगा कि बौद्धों का सिद्धान्त भी वैदिक शिक्षा से सम्बन्ध रखता है। बौद्ध सिद्धान्त वहाँ तक ठीक है जहां तक वह सृष्टि की अनादिता और अनन्तता का समर्थन करता है, परन्तु जब वह वर्त्तमान संसार का जिसमें हम रहते हैं आदि और अन्त होना नहीं मानता तो भूल करता है। सामी सिद्धान्त इसके ठीक प्रतिकूल हैं। उस अंश तक तो वह ठीक है जब तक उसका विश्वास है कि सृष्टि का आदि भी है और अन्त भी। परन्तु जब वह इस बात को नहीं मानता कि इस सृष्टि उत्पन्न होने से पूर्व दूसरी सृष्टि थी अथवा इसके पश्चात और संसार होगा तो वह भूल करता है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि बौद्ध और सामी दोनों मतों के विचार वहाँ तक तो ठीक हैं जहाँ तक वे मानते हैं परन्तु न मानने के अंश में वे ठीक नहीं रहते, दोनों ही अपूर्ण हैं। एक, एक बात में भूल करता है तो दूसरा, दूसरी ओर चल कर रुक जाता है। दोनों एक दूसरे की पूर्त्ति करने वाले हैं। वैदिक शिक्षा मूल सिद्धान्त है जिससे दोनों मत निकले हैं तथा जिसके दोनों ही पृथक और अपूर्ण अंश हैं।

८—पुनर्जन्म

मैं कहाँ से आया हूँ? कहाँ जाऊँगा? प्रश्न का सभी किसी समय करते हैं। ये जीवन सम्बन्धी वैसे ही प्रश्न हैं जैसे कि पिछले अंश में

सृष्टि सम्बन्धी प्रश्न दिये जा चुके हैं। [illegible] में है इन का आत्मा से। वे भौतिक विज्ञान से [illegible] आध्यात्मिकज्ञान से; परन्तु धर्म की विस्तृत [illegible] ही हैं और प्रत्येक धर्म को इन दोनों प्रकार के प्रश्नों के [illegible] चाहिये।

सृष्टि सम्बन्धी प्रश्नों के समान ही इस विषय [illegible] उत्तर स्वामी मतों के सर्वथा विपरीत प्रतीत होंगे। [illegible] में से प्रत्येक प्रश्न के उत्तर वैसे ही [illegible] दिये थे।

हम देख चुके हैं कि वैदिक मत के अनुसार [illegible] में से वर्तमान सृष्टि भी एक है। इसी प्रकार [illegible] हमारा वर्तमान जीवन अनन्त योनि [illegible] यह आवश्यक नहीं कि पूर्व के [illegible] उपादान कारण के समान आत्मा भी अनादि [illegible] शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह [illegible]

कठोपनिषद् कहता है:—

> न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं [illegible]
> अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते [illegible]
>
> [illegible]

यह चेतन आत्मा न पैदा होता [illegible] वस्तु से बनता है, न इससे कोई [illegible] अनादि, अनन्त और सनातन है। [illegible]

आत्मा का किसी शरीर विशेष से [illegible] वियोग [illegible] कहाता है। आत्मा [illegible] कर्मानुसार मनुष्य, पशु और वनस्पति [illegible] हम कठोपनिषद् से फिर [illegible] करते हैं —

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनं ।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥
योनि मन्ये 'प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणु मन्येऽनुसंयतन्तियथा कर्म यथा श्रुतम् ॥

कठवल्ली ५। ६-७

हे गौतम ! मैं तुझ पर वह सनातन और दिव्य रहस्य प्रकट करूँगा कि मरने पर आत्मा कहाँ जाता है ? कुछ आत्माएँ अपने कर्म और ज्ञानानुसार दूसरे शरीर धारण कर लेती हैं और कुछ वनस्पति अवस्था में चली जाती हैं।

यह आवागमन का क्रम उस समय तक रहता है, जिस समय तक आत्मा अपने समस्त पापों से मुक्त हो योग द्वारा सत्य और पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति या निर्वाण पद प्राप्त करती तथा परमेश्वर से सहयोग करके पूर्णानन्द का उपभोग करती है।

जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है साम मतानुसार संसार अपने ढंग का सब से पहला और सब से पिछला है। तदनुसार उन मतों का यह भी सिद्धान्त है कि हमारा वर्त्तमान जीवन इस प्रकार का एक ही जीवन है। आत्मा अपने भौतिक देह के साथ पैदा होता है, शरीर के साथ ही नष्ट नहीं होगा और न वह फिर शरीर ही धारण करेगा, प्रत्युत मृतोत्थान के उस दिन तक अपने भाग्य के निर्णय की प्रतीक्षा करेगा, जिस दिन कि ईश्वर प्रत्येक आत्मा के लिये न्याय व्यवस्था देगा और कुछेक को सदैव के लिये स्वर्ग में और शेष को सदैव जलने वाली नरकाग्नि में भेजेगा।

सृष्टि सम्बन्धी प्रश्नों के समान ही इस सिद्धान्त के मानने वाले पुरुषों को अनेक कठिन प्रश्नों के उत्तर देने पड़ते हैं। ईश्वर ने अभाव से आत्मा को क्यों उत्पन्न किया और किसी को दुःखी और किसी को सुखी बनाया ? यदि यह मान भी लिया जावे कि उसने आत्माओं को उत्पन्न

किया तो उसने किसी-किसी को ही शारीरिक, मानसिक और [illegible] विक उत्तम गुण क्यों प्रदान किये? सब को क्यों [illegible]? उसने [illegible] बुरी दशा में क्यों रक्खा? दुःख, सुख और ज्ञान [illegible] गुणों का विषम होना ऐसी सत्य घटना है कि इससे कोई इनकार नहीं कर सकता और यह इतनी स्पष्ट है कि कोई [illegible] यथार्थता को नहीं हटा सकता। यदि [illegible] पूर्व शुभाशुभ कर्म न थे तो क्या परमेश्वर अन्यायी है? [illegible] पर इस प्रकार के जटिल प्रश्नों का [illegible] शरण टटोलते फिरते हैं, जो इस प्रकार के [illegible] सुगम मार्ग है।

यह सिद्धान्त अन्याय से प्रारम्भ होकर [illegible] है। मनुष्य का जीवन चाहे जितना दुष्टता पूर्ण हो [illegible] दृष्टि से अनन्तकाल के लिये नरक [illegible] सकता। न्याय के साथ यदि दया को [illegible] आवश्यकता है कि [illegible] एक दुष्टतापूर्ण जीवन से चाहे [illegible] काल तक रहने वाली नरकाग्नि [illegible] हो सकता है? सदा के लिए [illegible] और घृणास्पद है। इसमें आश्चर्य नहीं [illegible] शील ईसाइयों को [illegible] जैसे [illegible] केवल [illegible] और पापात्मा नष्ट हो जाती है, क्योंकि [illegible]

---

† देखो Le[illegible] of Christianity [illegible] Fowler pp. 15[illegible]

अच्छा उत्तर है ? आत्मा का सर्वथा अस्तित्व ही न हो जाना उतना ही असम्भव है जितना अभाव से उसका उत्पन्न होना। इस उत्तर के अनुसार केवल नरक सम्बन्धी सिद्धान्त ही नहीं प्रत्युत आत्मा का अमरत्व भी कोरी कल्पना रह जाती है।

इसके अतिरिक्त क्या यह न्याय है कि जब उसका सारा भविष्य, नहीं नहीं अनन्त काल ख़तरे मे हो, आत्मा को केवल एक ही परीक्षा का अवसर दिया जावे। इसे कोई अस्वीकार नहीं करता कि मनुष्य जीवन एक कठिन परीक्षा है। पद-पद पर प्रत्येक प्रकार के प्रलोभन हमारे मार्ग मे उपस्थित होते हैं और बहुत से लोग सुलभतया उनके चुङ्गल मे फँस जाते हैं। यहाँ तक कि ईसाई लोग संसार में इतने अधिक पापों का कारण बताने के लिए शैतान के व्यक्तित्व को और इस सिद्धांत को मानना आवश्यक समझते हैं कि आदम के पाप करने से सब मनुष्यों के आत्मा मे पाप का बीज आगया। इस पर भी आत्मा को केवल एक बार ही परीक्षा का अवसर दिया जाता है, अधिक नहीं। यदि वह परीक्षा मे सफल होकर निकल आती है तब तो अच्छी बात है नहीं तो उसके लिए अत्यन्त दुःख है; क्योंकि इस दशा में उसको अनन्त काल के लिए दण्डित किया जाता है और फिर उसको मुक्ति की कोई आशा नहीं रहती। पाठक गण ! इसकी तुलना पुनर्जन्म सम्बन्धी वैदिक शिक्षा से कीजिए जिसके अनुसार भूली हुई आत्माओं को लघुतर श्रेणी के जीवों के शरीरों मे नियत अवधि तक अपने कुकर्मों का फल भोगना पड़ता है और जब वे अपने पापों से मुक्त हो जाती है तो फिर वे मनुष्य योनि मे जन्म ग्रहण करती हैं। इस प्रकार उनको स्वतन्त्रता पूर्वक ज्ञान द्वारा सन्मार्ग या कुमार्ग ग्रहण करके मुक्ति के लिए प्रयत्न करने का नवीन रूप से अवसर दिया जाता है।

हम यह भी कहना चाहते हैं कि समस्त आत्माओं का साधारण दृष्टि से भलाई-बुराई की दो श्रेणियों में विभक्तकरके उनमें से एक को सदा के लिए स्वर्ग भेज देने और दूसरी को नरकानल में झोंक देने से

न्याय का पैदा पूरा नहीं होता। मनुष्यों में जो भिन्न [illegible] होते हैं और उन में भलाई या बुराई की उन्नति [illegible] मनुष्य हैं। उनके साथ न्याय पूरा और [illegible] विचार में यह आवश्यकीय है कि उपकार व [illegible] के हों और ऐसा होना पुनर्जन्म द्वारा ही सम्भव है, [illegible] दुखों की असंख्य कलाएँ नियत की जा सकती हैं।

इस आवागमन की शिक्षा पारसी पुस्तकों में भी [illegible] कि वैदिक धर्म में [illegible] में लिखा है —"दुबारा [illegible] शरीर धारण करना अनिवार्य है।" फिर '[illegible]' में [illegible] है,—"अपने कर्म व ज्ञान के अनुसार प्रत्येक मनुष्य [illegible] स्थान पाता तथा वहां सदैव रहता है। [illegible] जो संसार में आना चाहता है, [illegible] का जन्म धारण करता है, जिससे वह अपने [illegible] वाहदावाद नबी की सम्मति है कि जो [illegible] जो आनन्दोपभोग के [illegible] परिणाम होते हैं।

उपरोक्त लेख पर [illegible] का अशुभ और शुभ [illegible] सुकर्मों का [illegible] हो सकता।"

[illegible]

सिंह, चीता, बाघ, बघेरा, भेड़िया तथा समस्त क्रूर जीव जो अन्य पशु, पक्षी, चौपाए और कीड़े-मकोड़ों को हानि पहुंचाते हैं पहले प्रतिष्ठित और उच्च पदस्थ मनुष्य थे और वे पशु * जिन्हें अब ये मनुष्य मारते हैं उनके मन्त्री, सेवक और सहायक थे। ये लोग उनकी मन्त्रणा वा सहायता से बुरे कर्म करते तथा अनुपकारी और निरपराध जीवों के लिए दुखदायी होते थे। अब वे अपने शासक और स्वामी के हाथों से दण्ड पा रहे हैं। (७१)

अन्त मे ये जानवर जो किसी समय में उच्च पदस्थ थे अब क्रूर पशुओं के रूप में कर्मानुसार किसी दुःख, दर्द या आघात से मर जाते हैं। यदि फिर भी उनके पापों का कोई अंश रहेगा तो वह अपने सहायकों सहित पुनः जन्म धारण कर दण्ड भोगेंगे। (७२)

उपरोक्त लेख पर टीका करते हुए सासान पंचम लिखते हैं:—"जब तक पाप की मात्रा समाप्त न हो जायगी तब तक वह दण्ड भोगते ही रहेंगे, चाहे उसकी पूर्त्ति एक जन्म में हो वा १० और १०० में अथवा इससे भी अधिक मे।"

मिहावाद लिखता है:—

तुम जन्दआर जानवरों को मत मारो, अर्थात ऐसे जानवरों को नहीं मारते अथवा हानि नहीं पहुंचते, जैसे घोड़ा, गाय, ऊँट, खच्चर, गधा तथा अन्य इसी प्रकार के जन्तु। तुम उन्हे निर्जीव मत करो,

---

* सम्भव है यह व्याख्या कोरी कल्पना प्रतीत होगी। कुछेक संस्कृत पुस्तकों में भी ऐसे ही अथवा इन से भी अधिक कल्पित व्याख्यान मिलेंगे, परन्तु वास्तव में वे पुनर्जन्म सिद्धान्त के आवश्यकीय अंग नहीं हैं और उनसे इस सिद्धांत का महत्त्व कम न होना चाहिए जो ईश्वरीय न्याय को युक्त और वाचिक रीति से सिद्ध करता है और संसार में दुःख सुख के के विषम विभाग का कारण बतलाता है।

क्योंकि सर्वज्ञ परमेश्वर ने उनके दण्ड का प्रकार [illegible] है और वह उनके पूर्व कर्मों का फल दूसरी योनि में [illegible] है, [illegible] घोड़े से सवारी का काम लिया जाय, और बैल, [illegible] और गधे बोझ ढोने के काम आवें (७४)

यदि कोई समझदार मनुष्य जान बूझ कर [illegible] को मारता है और परमेश्वर या राजा से [illegible] दंड नहीं पाता तो फिर वह दूसरे जन्म में उसका फल भोगता है। (५४)

जन्दवार जानवरों की हत्या करनी [illegible] मूर्ख और निरपराध मनुष्य को मारना। (५[illegible])

(क्योंकि मूर्ख मनुष्यों के समान) जन्दवार [illegible] काम आते हैं परमेश्वर के कोप से इस दशा को प्राप्त [illegible] (५[illegible])

यदि जुन्दवार* जानवर अर्थात् जो दूसरे जानवरों को [illegible] कष्ट पहुंचाता है जन्दवार को मारे, तो [illegible] है,

---

* चुनि इस प्रकार [illegible] होने के कारण अपने कर्मों के [illegible] में दण्ड देने के [illegible] के समान है। [illegible] जन्दवार को मार दे तो [illegible] परन्तु यदि कोई आदमी जन्दवार [illegible] करनी चाहिये, क्योंकि मनुष्य [illegible] का उत्तरदाता [illegible] वस्तुतः यह सिद्धान्त [illegible] से नीची श्रेणी के जीव [illegible] जिससे जीवों को [illegible] [illegible] का फल भोगता [illegible] उत्तरदाता है। [illegible] पशोन की गई है।

जिसका रक्त बहाया गया उसके कार्यों का परिणाम है, जिसके प्राण लिये गये उसके कर्मों का फल है, क्योंकि तुन्दवार जानवर दण्ड देने के लिये बनाये गये हैं। (७६)

तुन्दवार जानवरों का मारना उचित और उपयोगी है; क्योंकि वे अपने अन्तिम और पूर्व जीवन मे क्रूर तथा घातक (मनुष्य) थे और निरपराध जीवों की हत्या किया करते थे। जो उन्हे मारता है पुण्य कमाता है। मनुष्यों मे जो लोग, मूर्ख, अज्ञानी और दुराचारी हैं वे अपनी मूर्खता, अज्ञानता और दुराचारिता का दण्ड वनस्पति के रूप मे पाते है। (८०, ८१)

वे लोग जिनके आचार विचार बुरे हैं धातु † बनते हैं और जब तक तक प्रत्येक जीव के पापों का दण्ड नहीं मिल जाता कि कोई पाप शेष न रहे तब तक वे धातु बने रहते हैं। फिर क्लेश और अधःपतन सहन करने के पश्चात् पुनः मनुष्य देह प्राप्त करते हैं। तदुपरान्त फिर वे उन कर्मों का फल भोगेंगे जिन्हे वे मनुष्य योनि मे करेंगे। (८३)

पिछले अध्याय के पाँचवें और छठे अंशों मे हमने कहा था कि बाइबिल ,क़ुरान ने स्वर्ग और नरक सम्बन्धी अपने विचार ज़न्दावस्ता से लिये हैं। यह ठीक है परन्तु हमें केवल स्मरण रखने की आवश्यकता है कि पारसियों का सातवाँ या सर्वोच्च स्वर्गधाम 'गरत्मान' अर्थात 'प्रकाशगृह'* कहलाता है, जिसमें अहुरमज़दा, अमेश, स्पन्द तथा पवित्र लोगों की आत्माओं के साथ रहता है। यह बात वैदिक सिद्धान्त में मुक्ति के विषय में घटती है जिसमें जीवात्मा ईश्वर से संयोग करके पूर्णानन्द का उपभोग करता है। ज़रदुश्तियों के स्वर्ग के शेष दर्जे उन उच्च

† यह विचार कि आत्मा धातु के रूप में जन्म करता है, वैदिक सिद्धान्त के अनुकूल नहीं है।

* वेदों में भी मुक्ति या स्वर्ग को स्वः द्यौः आदि प्रकाश बोधक नामों से पुकारा गया है

दशाओं के स्थानापन्न हैं, जिनमें होकर मनुष्य का [illegible] पहुंचना है और जो नरक के दर्जे कहे गये हैं उनमें उन लोगों [illegible] ओर निर्देश किया गया है जो मनुष्य को आवागमन [illegible] प्राप्त होती हैं। इस बात की पुष्टि दस्तातीर के [illegible] प्रथम कहते हैं—

"आत्मा एक शरीर से दूसरे में जाती है। जो लोग [illegible] बुरे कर्मों से मुक्त होते हैं वे ईश्वर का दर्शन करते हैं, [illegible] कुछ कम श्रेणी के होते हैं वे स्वर्ग में निवास करते हैं। [illegible] श्रेणी के होते हैं वे एक भौतिक शरीर से [illegible] सासान पंचम टीका करते हैं,—

"जो सब से प्रथम और उच्च श्रेणी के [illegible] बन्धन और कर्म पूर्णता को प्राप्त हो चुके हैं वे [illegible] हैं। उनसे दूसरे दर्जे पर वे लोग हैं जिन्होंने भौतिक [illegible] मुक्त कर लिया है, ये लोग उस स्वर्ग विशेष को जाते हैं [illegible] सम्बन्ध पैदा कर लिया है और वे उसमें [illegible] को प्राप्त होते हैं। यदि जीवात्मा भौतिक [illegible] उसकी भलाई वा धर्म अधिक होता है तो [illegible] में जाता है यहां तक कि मुक्ति प्राप्त [illegible] कहलाता है। बुरे कर्मों के कारण आत्मा [illegible] करता है यह [illegible] कहलाता है। [illegible] जिसको संगसार कहते हैं। [illegible] संगसार के नाम से पुकारते हैं। [illegible] इससे स्पष्ट है कि [illegible]

---

* [illegible] नामक यही मानते आचार है।

सुप्रसिद्ध पारसी दस्तूरों ने लिखा है भौतिक अर्थों मे नहीं समझना चाहिए। और वह किसी प्रकार आवागमन के सिद्धान्त के विपरीत नहीं है। यहूदी, ईसाई और मुसलमानी मतों मे इस शिक्षा का यथार्थ और भी अधिक भुला दिया गया। वे पुनर्जन्म के सिद्धान्त को भूल गये और नरक स्वर्ग को आत्मा की दशा मे न मान कर स्थान विशेष के नाम समझे जाने लगे।'

९—मांस-भोजन-निषेध।

आवागमन में विश्वास रखने से स्वभावतः ही पशु जीवन के प्रति प्रतिष्ठा का भाव उत्पन्न होता है जिससे जीवों के प्राण पवित्र माने जाते हैं। इस परिणाम के उदाहरणार्थ हम पिछले अंश मे उद्धृत किये हुए 'नामामिहावाद के ७४ से ७७ वचनों की ओर ध्यान दिलाते हैं।' कोई आश्चर्य की बात नहीं कि वैदिक और पारसी धर्म दोनों ही मांस भक्षण और रसना के स्वाद के निमित्त निरपराध पशुओं के वध का निषेध करते हैं। इसे सब कोई जानता है कि वैदिक धर्म में मांस खाने की आज्ञा नहीं, पारसी मत की पुस्तकें भी इसका खण्डन करती हैं। पाठकों के ध्यान मे यह बात हमारे उद्धृत किए हुए मिहावाद के ७१—७६ वचनों से पूर्व ही आ गई होगी। आगे चलकर वे लिखते हैं:—

"बहुत से विचारवान बनाए गए हैं तथापि वे बुरे कर्म करते हैं, जैसे वे मनुष्य ओ जो निरपराध पशुओं के वध करके उनके मांस से अपने उदर की पूर्त्ति करते हैं।" (१३१)

फिर 'जवांशेर' मे एक 'समेलन' की बात लिखी है, जिसमे मनुष्य और जानवरों के प्रतिनिधि विवाद के लिये एकत्रित हुए थे।

उसमे लोमड़ी ने मनुष्य से इस प्रकार कहा:—"जन्तु अन्य जीवों का हनन करने के लिये बाध्य हैं क्योंकि उनका प्राकृत भोजन मांस है। परन्तु मनुष्य को मांस खाने की आवश्यकता नहीं है। तब वह क्यों उनके जीवन का हरण करता है। तुम इस प्रकार के कार्य्य करने से पापी बन

गए हो अतएव धर्मात्मा और ईश्वर भक्त पुरुष [illegible]
हैं।" मनुष्य का प्रतिनिधि इसका उत्तर देने में असमर्थ [illegible]।

यद्यपि मांस खाने का निषेध किया गया है, परन्तु [illegible]
कि किसी प्रकार के जानवर का वध ही न किया जावे। [illegible]
पारसी दोनों धर्म हानिकारक और भयङ्कर जीवों [illegible]
देते हैं। (देखो पूर्व के अंश में उद्धृत [illegible] ८०)

१०—गौ की प्रतिष्ठा।

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू और पारसी दोनों [illegible]
सम्बन्धी कार्यों में उपयोगी होने के कारण, [illegible]
का भाव रखते हैं। जन्दावस्ता के निम्नलिखित [illegible]
विषय में अधिक स्पष्ट [illegible]

"बैल में हमारी आवश्यकता है, [illegible]
बैल में हमारी विजय है, बैल में हमारा भोजन [illegible]
कृषि कर्म है जो हमारे लिये [illegible] उपजाता है। [illegible]

गौ की पवित्रता के भाव [illegible] पारसी धर्म में [illegible]
अधिक गहरे हैं, क्योंकि उनके [illegible]
से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। [illegible]
यास्न २९ के आधार से उद्धृत करते हैं [illegible]
ईरानी लोगों के समुदाय की प्रतिनिधि [illegible]
उत्तम जीविका [illegible]
है और संकटापन्न लोगों की [illegible]

---

* [illegible]
[illegible]
में हमारी कृषि है जो हमारे लिये [illegible] है।

हुई अत्यन्त करुणा पूर्वक अहुर और उनके दिव्य सेवक अशा को सम्बोधित करती हैं।" †

"हे अहुर और अशा! तुम्हारे समस्त गौओं * (हमारे पवित्र और जन समूह) की आत्मा पुकारती है—तुमने मुझे किसके लिये पैदा किया था? मेरे ऊपर कोप और क्रूर शक्ति का आक्रमण होता है, मृत्यु को आघात पहुंचाया जाता है। ढीठ, दुष्ट और चोरों की शक्ति का आक्रमण किया जाता है। आपके अतिरिक्त मेरे पास दूसरा चारा नहीं। अतएव तुम मुझे खेतों में अच्छी कृषि करनी सिखाओ, मेरे भले की केवल यही आशा है।"

इस अवसर पर जरदुश्त भी आकर गौ की आत्मा के साथ उसकी विनती तथा प्रार्थना मे सम्मिलित हो जाते हैं। तब अहुर उनको ऋषि स्मृतिकार के पवित्र पद पर प्रतिष्ठित करता है।

इस बात को दर्शाने के लिये कि पारसी लोग गौ के कितने भक्त हैं, यह लिखना आवश्यक है कि गो मूत्र जो जन्द अवस्ता में गोमेज़ (सं० गोमेद) कहलाता है उनके संस्कार और कृत्यों मे लाया जाता है। डाक्टर हॉग इसके सम्बन्ध में बरश्नोम नामक संस्कार का वर्णन करते हैं जो नौ रात्रि तक होता है और जिसमें संस्कार करने वाला गो मूत्र पीता है। वे आगे लिखते हैं:—"यह प्रथा बहुत पुराने समय से चली आई है जब कि प्राचीन आर्य्य गो मूत्र मे रोग दूर करने और शुद्ध करने के गुण मानते थे"। हिन्दुओं के संस्कारों मे पञ्चगव्य और गो मूत्र के उपयोग का वर्णन करते हुए डाक्टर हाग लिखते हैं:—"यह प्रथा बहुत ही पुराने समय से चली आई है जब कि गो मूत्र सारे शारीरिक

† देखो जन्दावस्ता भाग ३ पृ० ३।

* डाक्टर हाग इसका अर्थ 'पृथ्वी की आत्मा करते हैं। गो के अर्थ पृथ्वी और गाय दोनों के हैं' देखो ११ अंश।

रोगों के लिये एक बड़ी प्रभावशाली औषधि समझा जाता था। ईरान के देशों में भी हमारे समय तक किसानों के वैद्य तो कुछ और होम जैसी औषधियों का प्रयोग करते आये हैं।"†

११—यज्ञ-क्रिया

ज्ञान काण्ड वा धार्मिक सिद्धान्तों से चल हम यज्ञ कृत्यों की ओर आते हैं। इस विषय में पारसी या वैदिक धर्म के मध्य जो समानता पाई जाती है वह बहुत ही आश्चर्यजनक है।

पिछले अध्याय के ७वें अंश में हम पूर्व ही बता चुके हैं कि वैदिक कर्मकाण्ड में अग्नि होत्र की कितनी अधिक प्रधानता है। यह [illegible] के पंच नित्य कर्मों में से एक कर्म है। मनुष्य को जन्म से [illegible] जो १६ संस्कार करने पड़ते हैं, प्रत्येक में इसका विधान किया गया है। हम यह बात भी बता चुके हैं कि पारसी लोग इस [illegible] में कितने नियमित हैं, यहाँ तक कि उनका नाम ही अग्निपूजक हो गया।

दोनों धर्मों के कृत्यों की समानता उन नामों से भी पाई जाती है जो उनके लिये व्यवहृत होते हैं। हम डाक्टर हॉग का [illegible] "वेद और जन्दावस्था के पढ़ने वाले लोगों को [illegible] कि पुरोहिताई के कृत्यों से सम्बन्ध रखने [illegible] जन्दावस्था में पुरोहित के लिये [illegible] शब्द [illegible] में अथर्वन से किया जा सकता है। इसके अर्थ अग्नि और सोम के पुरोहित के हैं। वैदिक शब्द हो[illegible] और [illegible] इष्टि और आहुति से होती है। दोनों धर्मों में [illegible] हैं जो किसी बड़े यज्ञ का सम्पादन करते समय [illegible] आते हैं। ऋग्वेद का उच्चारण करने [illegible] और [illegible] पुरोहित एक ही बात है। अध्वर्यु अथवा यज्ञकर्त्ता पुरोहित [illegible]

† देखो Haug's Essays, [illegible]

सामग्री संचित करता है वह रथ्वी है जो अब रस्मी कहाता है। यह अब प्रधान पुरोहित या जोता का एक सेवक मात्र होता है।"*

यस्न शब्द संस्कृत 'यज्ञ' शब्द से पूर्ण मिलता है।†

समानता की इति श्री यहीं नहीं हो जाती। डाक्टर हॉग साहब पारसी और इस देश के प्राचीन आर्यों में बहुत मुख्य-मुख्य यज्ञों मे सादृश्य दिखाते हैं।

"ज्योतिष्टोम वा इजश्ने" यज्ञ मे सोमलता के रस की आहुति देना सब से अधिक महत्त्व की बात है। दोनों के यज्ञों मे इस पौधे की डालियाँ प्राकृतिक रूप मे उस पवित्र स्थान पर लाई जाती हैं जहाँ यज्ञ होता है और वहाँ प्रार्थना पढ़ते हुए उसका रस निचोड़ा जाता है। रस निकालने की विधि तथा उसके लिये जो पात्र व्यवहृत होते हैं उनमे कुछ भेद हैं परन्तु यदि अधिक अन्वेषणा की जावे तो इन दोनों है भी वास्तविक समता पाई जाती है।"

"दर्श पौर्णिमाइष्टि (अमावस्या और पूर्णमास का यज्ञ) पारसियों के दारून Darun से मिलता हुआ मालूम होता है। दोनों बहुत साधारण हैं। ब्राह्मण लोग यज्ञ मे विशेषतः पुरोडाश का उपयोग करते हैं और पारसी लोग 'पवित्र रोटियों' (दारून) का, जो पुरोडाश से मिलती हुई है।"

"चातुर्मास्येष्टि यज्ञ जो चार मास अथवा दो ऋतुओं के पश्चात् किया जाता है, पारसियों के 'गहन बार' से मिलता है जो वर्ष मे ६ बार होता है।"‡

बहुत से विद्वानों का कथन है कि वेद मे पशु वध की आज्ञा है, यहाँ

* Haug's Essays p. 280.

† Ibid p. 130.

‡ Haug,s Essays p. 285.

तक कि यज्ञ के लिये गोवध तक का विधान है। यह प्रश्न इतना विवादास्पद है कि उसकी इस पुस्तक में विवेचना नहीं की जा सकती, तथापि हम वैदिक यज्ञ गोमेध के सम्बन्ध में जिसके अर्थ गोवध के लगाये जाते हैं—कुछ कहना उचित समझते हैं। हम इस यज्ञ को जन्दावस्ता में भी पाते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने सत्यार्थ प्रकाश* में बतलाते हैं कि संस्कृत भाषा के 'गो' शब्द के अर्थ केवल गाय के ही नहीं प्रत्युत पृथ्वी और इन्द्रियों के भी हैं। गोमेध का आधि भौतिक अर्थ खेती के लिये धरती जोतना और आध्यात्मिक अर्थ इन्द्रिय दमन है। कुछ लोग इस व्याख्या का उपहास करते हुए उसे अर्थ की खींचतान बताते हैं। वे यहाँ कह डालते हैं कि वेद के इस प्रकार अर्थ लगाना अन्याय है। हमें देखना चाहिये कि डाक्टर हॉग जैसे प्रामाणिक और विश्वस्त पुरुष पारसियों के विषय में क्या सम्मति देते हैं "गोश उर्व का अर्थ पृथ्वी की सार्वभौमिक आत्मा है जो सब प्रकार के जीवन और वृद्धियों का कारण है। शब्द का अक्षरार्थ "गौ की आत्मा" है यहाँ उपमालङ्कार है क्योंकि पृथ्वी की गाय से तुलना की गई है। [illegible] का अर्थ लिया जाता है। अहुरमज़्दा और स्वर्गीय सभा ने जो आदेश दिया है उसका मतलब यह है कि धरती को जोतना चाहिये। इसलिए वह खेती के काम को धार्मिक बतलाता है।"†

हम पाठकों का ध्यान रेखाङ्कित वाक्यों की ओर विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। क्या यह वही बात नहीं है जो स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक 'गोमेध' के विषय में कही है?

एक पाद-टिप्पणी में डाक्टर हौग लिखते हैं कि "[illegible] दो अर्थ हैं—गाय और धरती। यूनानी शब्द [illegible]

* देखो सत्यार्थप्रकाश ११ समुल्लास पृ० ३०४

† Haug's Essays p. 1[illegible].

कहता है वही कर्म से करता है ।‡‡

जरदुश्त की फ़िलासफी के विषय में डाक्टर हॉग लिखते हैं—"कि उसके फ़िलासफी सम्बन्धी विचार मन, वचन और कर्म के त्रिकोण में घूमते थे" ।❀

वे फिर लिखते है:—

"हुमतम् † (अच्छी तरह सोचा हुआ) हूख्तम् † (अच्छी तरह से कहा हुआ) हूर्श्तम् † (अच्छी तरह किया हुआ)" ये शब्द ज़रदुश्ती सदाचार के मूल सिद्धान्त हैं, और बारम्बार‡ उनका अनेक स्थान पर वर्णन आता है" । यहाँ ज़न्दावस्ता के एक दो वचन उद्धृत करके इस बात को दिखाते हैं:—

"अच्छा सोचा हुआ, अच्छा कहा हुआ और अच्छा किया हुआ' इन शब्दों द्वारा ।"❀

"अच्छा सोचा हुआ क्या है ? शुद्ध मन (विचार) । अच्छी तरह कहा हुआ क्या है ? उत्तम वचन । अच्छी तरह किया हुआ क्या है ?, जिसे उच्च कोटि के पवित्र आदमी करते हैं ।"†

(ख) वेद पढ़ने वालों ने सोमलता का नाम अवश्य सुना होगा ।

---

‡‡ इसी प्रकार मनु जी ने भी कर्मों का विभाग मानस, वाचिक, कायिक तीन प्रकार का किया है । देखो मनु अ० १२ । ३–६

❀ देखो Haug's Eassps p. 300.

† हुमतम्	=	(संस्कृत)	सुमतम्
हूख्तम्	=	,,	सूक्तम्
हूर्श्तम्	=	,,	सुकृतम्

‡ ऐसे ही संस्कृत में मनसा 'वाचा' कर्मणा शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों पर आता है ।

* यास्न १६ । १६

इस लता का वेदों तथा प्राचीन वैदिक साहित्य में बहुत कुछ [illegible] वर्णन किया गया है। यह निश्चित नहीं कि सोम औषधि सम्बन्धी [illegible] बूटियों के समुदाय को बोध कराने वाली संज्ञा है, अथवा किसी बूटी विशेष का नाम ही है। यदि पिछली बात ठीक मानी जाय तो इस [illegible] की बूटी का अब तक पता नहीं लगा और न वर्तमान बूटियों में से [illegible] किसी का नाम है। प्रो० मोक्षमूलर २५ अक्टूबर सन् [illegible] के *Academy* पत्र में लिखते हैं:—

"धर्म सम्बन्धी कृत्यों की प्राचीनतम पुस्तकों अर्थात् सूत्र तथा [illegible] ग्रन्थों में भी यह बात मानी गई है कि असली सोम का मिलना [illegible] कठिन है और उसके स्थान में अन्य वस्तु काम में लाई जा सकती है। यह लिखा है कि जब वह मिल सकती थी तब जंगली लोग [illegible] [illegible]खण्ड में लाया करते थे। उस समय भी वह विशेष प्रदेश [illegible] पर ही मिल सकती थी।"* वे फिर लिखते हैं कि—"हमें [illegible] दूत निरपेक्ष भूकटिबन्धों के [illegible] में [illegible] [illegible], यदि वे अपने भ्रमण में सोमलता के सदृश पौधों को [illegible]।" प्रोफ़ेसर साहब अन्त में लिखते हैं कि—"जिस स्थान में [illegible] अपने आप उगता पाया जायगा उससे [illegible] [illegible] उन लोगों के पुरखाओं का निर्भयता पूर्वक [illegible] सकेगा जो दक्षिण में आकर संस्कृत या [illegible]।"

असली सोमलता चाहे जो हो परन्तु [illegible]

---

† पाल्म १६।१६

* देखो *Zoroastrianism in the Light of [illegible]*, पृ० ६८-६६ में "हविर सोम (होम) [illegible]" [illegible] पेल्मोरिया डिस्ट्रिक्ट न्यायदान।

† देखो ११ पेज का फुट नोट।

करना है कि जन्दावस्ता में होम ‡ की सोम के समान ही प्रशंसा की गई है।

"हे होम; मैं तुझ से जो मृत्यु को दूर मार भगाता है यह दूसरा आशीर्वाद माँगता हूँ अर्थात शरीर का निरोग होना (उस आनन्दमय जीवन को प्राप्त करने के पूर्व), हे होम; तू मृत्यु को दूर भगाता है अतएव मैं तुझ मे तीसरा आशीर्वाद अर्थात् दीर्घ जीवन चाहता हूँ।"*

"हे पीत वर्ण होम, मैं तुझ मे अपने वचनों से ज्ञान, सामर्थ्य, विजय, स्वास्थ्य, आरोग्य, उन्नति, वृद्धि, सारे शरीर का तेज और प्रत्येक प्रकार के विषय को समझने की बुद्धि स्थापित करता हूँ। मैं तुझ में (अपने वचन से) वह शक्ति स्थापित करता हूँ, जिसके द्वारा मैं संसार भर में स्वेच्छा पूर्वक विचार सकूँ, दुःखों की समाप्ति करता हुआ और (अच्छे विश्व के शत्रुओं की) नाश कारिणी शक्ति को नष्ट करता हुआ।" †

अब हम ऋग्वेद के कुछ मन्त्र उद्धृत करते हैं:—

सना च सोम जेषिच पवमान महिश्रवः। अथानो वस्यसस्कृधि ॥ सना ज्योतिः सनास्वर्विश्वा च सोम सौभगा। अथानो वस्यसस्कृधि ॥ सना दक्ष मुतक्रतुमपसोम मृधो जहि। अथानो वस्यसस्कृधि ॥

ऋग्वेद ९। ४। १–३

‡ जैसा हम पहले लिख चुके हैं संस्कृत सकार का ज़न्द या फ़ारसी में हकार हो जाता है, इसी अध्याय के अंश एक में शब्द समूह (१) देखो।

अब हम जन्दावस्ता के कुछ वचन उद्धृत करके यह दिखावेंगे कि जो भाव जन्दावस्ता में प्रकट किये गये हैं वे सोमलता सम्बन्धी वैदिक वर्णन से बहुत समानता रखते हैं।

* होम यश्त–यास्न ६

† होम यश्त १०

हे पवित्र सोम ! तू बड़ा पुष्टिकारक भोजन है, [illegible] ([illegible] लिखी वस्तुएँ) प्रदान कर। हमें विजयी और हर्षित [illegible]।

हे सोम ! हमें प्रकाश (उद्दीप्यमान बुद्धि) दे। [illegible] हमें सबसे उत्तम वस्तुएँ दो और हमें हर्षित कर।

हे सोम ! हमें बल, बुद्धि दो। [illegible] हमें हर्षित कर।

कुछेक पाश्चात्य विद्वान जो यह सिद्ध करने की [illegible] कि आर्य लोग सोम मदिरा के सेवन के [illegible] एक मादक पौधा और उसके रस को [illegible] हैं। वेद और जन्दावस्ता दोनों में सोम या होम [illegible] कहा गया है, उसने ऊपर लिखा विचार [illegible] स्ता के विद्वान अनुवादक डार्मेस्टेटर के द्वारा [illegible] होम के अन्तर्गत समस्त प्रकार की [illegible] वेष्टित है।[illegible] जन्दावस्ता में होम [illegible] गया है और यही नाम उसके [illegible] वेदों में [illegible]।

अब इस में कोई शंका नहीं [illegible] वाली बूटी का नाम है। [illegible] है कि सोम भारतवर्ष में न [illegible] पैदा होता है। उसकी [illegible] असली रूप [illegible] सन्देह लगा दिया है। [illegible] है और जब [illegible] होम या सोम के द्वारा [illegible]

---

* जन्दावस्ता भाग १ [illegible]

† देखो ऋग्वेद १० । १७ । १५८-६३

सोम के दो भेद पहला सफेद होम और दूसरा दुःख रहित पौधा है, जिनका बाईबिल में ज्ञानतरु और जीवनतरु रूप से वर्णन है और जिनकी बाईबिल के स्वर्ग में कल्पना की जाती है। पिछले अध्याय के आठवें अंश में इस विषय पर हम डाक्टर स्पीगल की सम्मति उद्धृत कर चुके हैं और प्रोफ़ेसर मोक्षमूलर के वचन उद्धृत कर के यह दिखला चुके हैं कि वे भी सोम वा होम और बाईबिल के जीवन तरु मे समानता को स्वीकार करते हैं। अब हम मैडम ब्लैवस्टकी की सम्मति उद्धृत करते हैं—"सामान्य शब्दों मे सोम ज्ञान वृक्ष के फल का नाम है। ईर्षालु एलोहिम ने आदम, हव्वा अथवा यहुवी से इन्हीं को न खाने के लिये कहा था, क्योंकि 'कहीं ऐसा न हो कि आदमी उनके समान हो जाय।'*

सारांश

हम दिखला चुके है कि जरदुश्ती सिद्धान्तों और कृत्यों मे तथा वैदिक सिद्धान्त और कृत्यों मे कितना आश्चर्य जनक सादृश्य है। हमने यह भी दिखाया है कि जन्दावस्ता की भाषा और छन्दों में वैदिक भाषा व छन्दों का घनिष्ट सम्बन्ध है। यह भी बताया गया है कि प्राचीन समय मे दोनों धर्मों के अनुयायी अपने को आर्य नाम से पुकारते थे। क्या कोई पल भर के लिये भी कह सकता है कि ये सादृश्य और समता आकस्मिक है? इस प्रकार का न तो कभी किसी का विचार हुआ और न हो सकता है। हमें इसका कारण बताने के लिये नीचे लिखी तीन बातों में से एक-न-एक को अवश्य मानना पड़ेगा:—

१—वेदों के धर्म और भाषा ज़न्दावस्ता के धर्म और भाषा से लिये गये हैं।

---

* देखो Secret Doctrine Vol. II, pp. 498-499.

२—वेद और जन्दावस्ता की भाषा और धर्म [illegible] है। दोनों ही किसी प्राचीनतम और लुप्त [illegible] से निकले हैं।

३—जन्दावस्ता के भाषा और धर्म वैदिक भाषा [illegible]

संख्या एक में जो बात कही गई है [illegible] कहा। समस्त विद्वानों ने, जिनकी सम्मति इस विषय पर [illegible] जा सकती है, वेदों को जन्दावस्ता से पुराना माना है। [illegible] दो बातों में से किसी एक को स्वीकार करना होगा। [illegible] मानते हैं। उसे युक्तियों से सिद्ध करने के वास्ते [illegible]

वेद और जन्द भाषा में आश्चर्य जनक समानता [illegible] विलियम जोन्स की सम्मति पर ही [illegible]

सर विलियम लिखते हैं कि—"जन्द [illegible] एक शाखा थी। यह कदाचित [illegible] अथवा अन्य प्रचलित भाषाएँ जो भारतवर्ष में [illegible] जाती थी।"&

डारमेस्टेटर अपने जन्दावस्ता के [illegible] (The East Series) में इस विचार की [illegible] प्रमाणों को प्रस्तुत करते हैं, [illegible] वाले हैं। इस [illegible] आदि पुरुषों की सम्मति [illegible] नहीं। डारमेस्टेटर पादरी [illegible] Paulo de Saint Bartho [illegible] कि "यह इस परिणाम पर [illegible] फ़ारस और भारतवर्ष में [illegible]

& Asiatic Res[illegible]

का जन्म हुआ।" ❀ डारमेस्टेटर आगे कहते हैं—"१८०८ ई० में जान लिडिन John Lydon ज़न्द को पाली भाषा के समान एक प्राकृत की शाखा समझते थे। एर्सकीन Erskine की दृष्टि में जन्द संस्कृत भाषा की शाखा थी जिसे पारसी धर्म के संस्थापक ने भारतवर्ष से लिया, परन्तु यह भाषा फ़ारस में कभी नहीं बोली गई।" वे पीटर वोन वोहलन (Peter Von Bohlen) के विषय में कहते हैं कि "उसके अनुसार (ज़न्द प्राकृत) भाषा की शाखा है। जैसा कि जोन्स लीडन और एर्सकीन का कथन है।"❀

निम्नलिखित युक्तियों द्वारा हम इस बात को पर्य्याप्त रूप से सिद्ध कर देंगे कि ज़रदुश्ती मत वैदिक धर्म्म से निकला है।

(१) जरदुश्त जन्दावस्ता में एक पुराने ईश्वरीय ज्ञान का वर्णन करते हैं—"देखते हैं कि गाथाओं में (जो जन्दावस्ता का सबसे पुराना भाग है) एक प्राचीन ईश्वरीय ज्ञान की ओर संकेत किया गया है और सोश्यन्त, अथर्व तथा अग्नि के पुरोहितों की बुद्धि की प्रशंसा की गई है। यह अपनी मण्डली को अंगिरा की प्रतिष्ठा और सन्मान करने की ओर प्रेरित करता है अर्थात वैदिक मन्त्रों के अंगिरा जो प्राचीन आर्य लोगों के पूर्वज थे और जो अन्य पिछले ब्राह्मण परिवारों की अपेक्षा ज़रदुश्त से पूर्ववर्त्ती पारसी धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते थे। इन अंगिराओं का वर्णन अथर्वण अथवा अग्नि पुरोहितों के साथ प्रायः कई स्थलों पर किया गया है और दोनों वैदिक साहित्य में अथर्ववेद के कर्त्ता माने गये हैं। (जिनको हम ऋषि कहेंगे) यह वेद अथर्वाङ्गिरा अथवा अथर्व अङ्गिराओं का वेद कहलाता है।"†

डाक्टर हाग फिर कहते हैं:—

स्वयम् अपने ही पुस्तक में जरदुश्त अपने को अहुरमज़दा का प्रेरित

❀ Zend Avesta part 1 Introd p. XXL.

† Haug's Essays p. 294.

किया मथन अर्थात् मन्त्र द्रष्टा हुए करते हैं ।"*

(२) होमयश्त (जन्दावस्ता का एक प्रभाग) में [illegible] वाले चार मनुष्यों की गणना की गई है जो [illegible] सोमेष्टि या सोमयाग को किया करते थे । [illegible] शेष सब नाम वैदिक साहित्य में आते हैं ।

"पहला पुरुष जिसने सोमयज्ञ का विधान [illegible] । [illegible] लड़का पैदा हुआ, जो तेज युक्त, सुशील और [illegible] मनुष्यों में सूर्य को सबसे अधिक देख सकता था । [illegible] जिससे थ्रैतान पैदा हुआ और जिसने [illegible] तीसरा त्रित था, जिसके दो बेटे हुए । चौथा [illegible] पौरुषास्प था । होम जरदुश्त से कहता है—[illegible] पर शैतान के विरुद्ध लड़ने के लिये पैदा [illegible] विश्वास है और तू आर्यान वीज [illegible]"†

अब इन में से पहले दो [illegible] हैं जो वैदिक साहित्य में प्रसिद्ध हैं । [illegible] गया है और उसका नाम [illegible] है, जो फ़रदौसी के शाहनामे में [illegible] परम्परागत कथा का पता वैदिक साहित्य [illegible] यम, थ्रैतन, जमशेद और यमराज [illegible]

---

* वही पुस्तक पृ० २६७

† होम यश्त (Quoted [illegible] in Zoroastrianism [illegible]

‡ जैसा हम पहले कह चुके हैं [illegible] जो वेदों में [illegible] शब्द [illegible] नहीं होता, [illegible] 'एथ्राइण' से [illegible] है ।

और यम एक ही हैं। खशैत का अर्थ राजा है। दोनों के पारिवारिक नाम एक ही हैं। ज़न्दावस्ता में विवन्हु या विवन्हत का बेटा और वेद में वैवस्वत या विवस्वत का पुत्र दोनों एक ही बात है।"*

ज़न्दावस्ता के अनुसार यिम सब से पहला नबी भी है। अहुर मज़्दा कहता है कि—'हे पवित्र ज़रदुश्त तुझ से पूर्व सुन्दर यम सबसे पहला मनुष्य था, जिससे मैंने वार्त्तालाप किया, जिसको मैने जरदुश्ती धर्म-शास्त्र की शिक्षा दी।"†

जरदुश्त का दूसरा पूर्ववर्त्ती जो सोम यज्ञ का करने वाला कहा जा सकता है—आथ्व्य और उसके पुत्र थ्रैतान (शाहनामे का फ़रीदुन) आप्त्य और त्रैतान से मिलते हैं। डाक्टर हाग कहते हैं कि वैदिक त्रैतान मे थ्रैतान (फरीदुन) सुलभता से पहिचाना जा सकता है। उसके बाप का नाम आथ्व्य था जो त्रित के आप्त्य से जिसका प्रयोग प्रायः वेदों में हुआ है पूर्ण रूप से समानता रखता है। ‡

तीसरा थ्रित और वैदिक त्रित एक ही हैं। डाक्टर हॉग कहते हैं :—

"जन्दावस्ता के साम परिवार का (जिसमे महावीर रुस्तम पैदा हुआ) थ्रित सब से पहिला हकीम है जो अहरिमन द्वारा पैदा किये रोगों की चिकित्सा करता है। यह विचार भी वेदों मे त्रित के सम्बन्ध मे पाया जाता है। अथर्ववेद (६, ११३, १) में कहा गया है कि वह मनुष्यों के रोगों को दूर करता है..... । दीर्घ जीवन प्रदान करता है। प्रत्येक बुरी वस्तु शान्त होने के लिये उसके पास भेजी जाती है। (ऋ० ७, ४७। १३) जन्दावस्ता मे उसके इस गुण का संकेत साम अर्थात् शान्ति दाता के नाम से किया गया है।"*

---

* Haug's Essays p. 277.

† फ़र्गर्द २। २

‡ Haug's Essays p. 278.

* Haug's Essays p. 278.

यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि जरदुश्त के [illegible] छोड़ कर उसके शेष समस्त पूर्वजों के नामों का पता वैदिक [illegible] लग सकता है। उपरोक्त गणना स्पष्ट रूप से उस वैदिक [illegible] कथा की स्मृति स्वरूप है जो जरदुश्त के समय से ईरानियों में [illegible] प्रचलित थी।

(३) जिन्दावस्ता में अथर्व वेद की स्पष्ट और [illegible] हम उसको उसी प्रकार उद्धृत करते हैं जिस प्रकार [illegible] उद्धृत किया है।

"होम ने किरसानी को राजसिंहासन से उतार दिया, [illegible] लिप्सा इतनी बढ़ गई कि उसने कहा कि मेरे [illegible] लिये अथर्व लोग (अग्नि पुरोहित) 'अपाम [illegible], [illegible] समीप) का जाप न करने पायेंगे। [illegible] भ्रष्ट करता तथा उनका नाश करके [illegible]

एक नोट में डाक्टर होग लिखते हैं कि [illegible] होता है कि किरसानी अथर्व धर्म के विरोधी [illegible] सन्देह नहीं कि यह वैदिक मन्त्र का [illegible]

दूसरे नोट में विद्वान डाक्टर [illegible] —

"स्पष्ट रूप से ये शब्द अथर्ववेद [illegible] पर हस्त लिपियों में इस वेद का "शन्नो देवी [illegible] पीतये" मन्त्र से [illegible] हुए संहिता पुस्तकों के आरम्भ में [illegible] १-६-१ में यह मन्त्र दिया गया है और [illegible] हस्त लिपियों में भी आता है। [illegible] प्रारम्भ होता था। यह बात हमने भी [illegible] श्रुति प्राप्त वेदों के प्रारम्भिक मन्त्रों [illegible]

दर्ज करते हुए "शन्नो देवी रभिष्टय" * अथर्ववेद † के लिये लिखे हैं।"‡

अथर्ववेद का यह स्पष्ट और निर्विवाद प्रतीक इस बात के सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि वेदों का काल जन्दावस्ता से पूर्व का है।

(४) यह सिद्ध किया जा सकता है कि प्राचीन पारसी लोग भारत वर्ष से आकर ईरान वा फारिस देश मे बसे थे।

प्रोफ़ेसर मोक्षमूलर स्पष्ट रूप से लिखते हैं—"अब यह बात भौगोलिक साक्षी द्वारा भी सिद्ध हो सकती है कि फ़ारिस मे बसने से पूर्व पारसी लोग भारतवर्ष मे रहते थे। ज़रदुश्त और उनके पुरखाओं का वैदिक काल मे भारतवर्ष से जाना उसी प्रकार स्पष्ट रूप से सिद्ध हो सकता है जिस प्रकार मसीलिआ निवासिओं का यूनान से जाना।" ††

विद्वान प्रोफ़ेसर ने अपने "भाषाविज्ञान" सम्बन्धी व्याख्यान में इसी बात को और भी स्पष्ट शब्दों मे कहा है—

"पारसी लोग उत्तरीय भारत से आकर बसे थे। कुछ काल तक वे उन लोगों के साथ रहे जिनके पवित्र गायन को अब भी हम वेदों में पाते हैं। फूट हो जाने पर पारसी लोग पश्चिम की ओर एराकेशिया और फ़ारिस की ओर चले गये; उन्होंने नवीन नगरों और उन नदियों के

---

* यह आचमन-मन्त्र है, जिसे सब आर्य जानते हैं—"शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयो रभिस्रवन्तुनः" इसमें से जिन शब्दों के नीचे रेखा खिंची हुई है वे ज़न्दावस्ता में बहुत थोडे हेर फेर के साथ आते हैं।

† पाश्चात्य विद्वानों का निश्चय है कि वेद विविध समय में लिखे गये और अथर्ववेद चारों वेदों में से सब से पीछे का है। यदि अथर्ववेद ही ज़न्दावस्ता से पुराना सिद्ध कर दिया जाय तो यह परिणाम स्वतः निकल आता है कि शेष तीन वेद ज़न्दावस्ता से और भी अधिक पुराने हैं।

‡ Haug's Essays p. 182.

†† Chips from a German workshop. Vol. I, p. 235.

जिनके किनारे वे रहे वही नाम रक्खे जिनसे वे [illegible]
ये नाम उन स्थानों का स्मरण दिलाते हैं जिनसे वे [illegible]
फारसी अक्षर 'ह' संस्कृत के 'स' का द्योतक [illegible]
शब्द संस्कृत में 'सरयू' होता है। भारतवर्ष की पवित्र [illegible]
नाम का सरयू है, जिसका वेदों में भी वर्णन है, [illegible]

प्रोफेसर मोक्षमूलर की बताई [illegible]
फ़ारिस के बहुत से अन्य स्थानों के नामों का [illegible]
लग सकता है जैसे:—

(क) *Euphrates* जिसे सा [illegible]
की एक प्रसिद्ध नदी का नाम है। इसकी [illegible]
सकती है। संस्कृत में भारत इस देश का [illegible]
निवासियों का भी बहुत पुराना नाम है। [illegible]
तक भारत*, भारतवर्ष अथवा भारत [illegible]
हैं। जिन्होंने संस्कृत भाषा का प्रसिद्ध इतिहास [illegible]
वे जान सकते हैं कि प्रारम्भ में यह शब्द [illegible]
था। 'महाभारत' शब्द का अर्थ ही (महा) [illegible]
भरत के पुत्रों का इतिहास है। भारतवर्ष [illegible]
कहते थे उस नदी (फ़रात) के किनारे [illegible]
नाम पर रक्खा। यह बात कि संस्कृत [illegible]

---

† Lectures on the Science of [illegible]
1, p. 235.

*भारत भरत की [illegible]
भरत प्राचीन भारत के एक प्रसिद्ध [illegible]
प्रजा और फिर अपने देश को [illegible]
थे। इनकी सुप्रसिद्ध [illegible]

बदल जाता है वैदिक संस्कृत के गृभ ‡ ग्रहण धातु से (जो फारसी में गिरिफ्त हो जाता है) साफ हो जाती है।

(ख) बेग़ीज़न फारिस के एक प्रसिद्ध नगर का नाम है। यह फ़ारस के किनारे बसा हुआ है। वह किसी समय एक बड़े साम्राज्य की राजधानी थी। इसका पता भूपालान से जिसका अर्थ भूपाल निवासी है चल सकता है। सम्भव है भारतवर्ष से आकर लोगों ने इस नगर को बसाया हो।

(ग) तिगरी नदी के किनारे रहने वाले कौसी लोग सम्भवतया भारतवर्ष के प्राचीन नगर काशी या बनारस से जाकर बसे थे।

(द) ईरान, आर्य्यान शब्द का अपभ्रन्श है। इस देश का यह नाम उन आर्य्य लोगों ने रक्खा था जो उसमे आकर रहे थे।

यह दिखाने के लिये कि एक मत दूसरे से निकला है, तीन बातें सिद्ध करनी होंगी। अर्थात् (१) विचारों और सिद्धांतों की समानता, (२) एक की अपेक्षा दूसरे मत की प्रचीनता, (३) उनमे परस्पर सम्बन्ध का मार्ग। अब वैदिक और पारसी मत मे सिद्धातों की सदृशता इतनी स्पष्ट है कि कोई मनुष्य उसमें सन्देह नहीं कर सकता। जन्दावस्ता की अपेक्षा वेदों का समय अधिक पुराना है, यह बात भी स्पष्ट रीति से सिद्ध की जा चुकी है। जब यह सिद्ध हो गया कि ईरानी लोग भारतवर्ष से ही जाकर वैदिक काल मे बाहर बसे तो सम्बन्ध का मार्ग भी स्पष्ट हो जाता है। पिछले समय मे भी परस्पर गमनागमन और सम्बंध का मार्ग बताना कठिन नहीं। नामे ज़रदुश्त * मे लिखा है कि व्यास

‡ आधुनिक संस्कृत मे धातु का रूप गृह और वैदिक संस्कृत में गृभ होता है।

* यह पुस्क ज़न्दावस्ता से भले ही पिछला हो परन्तु ज़रदुश्त का रचा बताया जाता है। असली बात यह है कि इस नाम के कई पुरुष हुए हैं,—जैसे ब्रह्मा, वसिष्ठ, नारद और सम्भवतया व्यास नाम के भी अनेक ऋषि हुये हैं। दबिस्तान में १३ ज़रदुश्तों का वर्णन है उनमें सबसे पहला पितामा जरदुश्त था जो पारसी मत का प्रवंतक माना जाता है।

जी फाहिम को गये और वहाँ [illegible]
दुल्ल से कहना है—"ब्यास नामक एक [illegible]
समान पृथ्वी पर कोई न होगा, भारतवर्ष के [illegible]
प्रश्न करना चाहेगा कि विश्व का [illegible]
(६५-६६) ।

उससे कहना कि ईश्वर ने बिना किसी भी [illegible]
या बुद्धि उत्पन्न की और इस बुद्धि द्वारा [illegible]
किया । (६७)

प्रथम उत्पन्न हुई बुद्धि की [illegible]
पर किसी प्रकार का दोष नहीं [illegible] । (६८)

दूसरा प्रश्न होगा कि [illegible]
जल वायु के नीचे और पृथ्वी [illegible]

इस के आगे ब्यास के [illegible]
देने के लिये परमेश्वर [illegible]
व्याख्या में लिखना है—"[illegible]
राजा ने समस्त बुद्धिमान पुरुषों [illegible]
उपासना मंदिर में [illegible]
किया । "

यह कथा [illegible]
वैक्ट्रिया [illegible]

[illegible]
जा सकता है ।

- इस राजा [illegible]
[illegible]
[illegible]

वर्ष पूर्व पारसी मत को राज धर्म बनाया और उसका प्रचार किया। ज़रदुश्ती मत की उन्नति के लिये वह समय बड़ा महत्वपूर्ण था। व्यासजी का वर्णन बड़े गौरव के साथ किया गया है अतएव यहाँ सम्भवतया उन्हीं व्यास जी की ओर संकेत है जो वेदान्त सूत्र के कर्त्ता और पातञ्जल योग सूत्र के प्रसिद्ध भाष्यकार हुए हैं! पंचम सासान का भाष्य उनसे बहुत पीछे का बना हुआ है, इस लिये उसका यह कहना कि व्यास जी ने ज़रदुश्ती मत स्वीकार किया ठीक नहीं है।

पारसी ग्रन्थों का यह लिखना कम गौरव की बात नहीं है कि दोनों मतों के दो आचार्य ऐसे समय मे मिले जो पारसियों के इतिहास मे बहुत महत्वपूर्ण और स्मरण करने योग्य था।

इसके पीछे भी ज्ञात होता है कि सासान प्रथम, जिनके ग्रन्थों से अनेक बार उद्धरण दिये जा चुके हैं केवल इस देश मे रहते ही न थे प्रत्युत उन्होंने यहाँ किताबें भी लिखी थीं। उनके पुस्तक के ३८वें अंश में ईश्वर से कहलाया गया है—"तुम धन्य हो, क्योंकि मैंने तेरी इच्छाओं को स्वीकार कर लिया है।" इस पर सासान पंचम अपनी टीका करते हैं—"यहाँ यह पता देना चाहिये कि सिकन्दर के फ़ारिस विजय करने पर दारा का पुत्र सासान अपने चचा से अलग होकर भारत वर्ष गया और यहाँ पवित्रता और ईश्वर-भक्ति में लग गया। परमेश्वर उस पर दयालु हुआ इस लिये उसने उसे नबी बनाया।

ग्रंथकार डाक्टर एस० ए० खापड़िया एम० डी०, एल० आर० सी० पी० के अनुसार विश्तास्प अथवा गुस्तास्प का समय अब से लगभग २५०० वर्ष है। (देखो उनकी बनाई Teachings of Zoroaster and the Philosophy of the Parsi Religin, wisdom of the East Sereis पृष्ठ १५ से १८ तक)। यह समय प्राय: उतना ही है जितना हिन्दू इतिहास में महात्मा व्यास का बताया गया है।

इसके आगे सासान पंचम लिखता है कि [illegible] आयु भारतवर्ष में रहकर बिताई। इस प्रकार भारत ही में [illegible] अन्तिम धर्म-ग्रन्थ रचयिता पर जिसके लिये [illegible] सम्बन्धी ग्रन्थों से पारसियों की बनाई [illegible] दया का सञ्चार हुआ। इसका तात्पर्य सासान पंचम [illegible] प्रेरणा वा प्रकाश होना बतलाते हैं।

इस प्रकार यह बहुत स्पष्ट है कि ज़रतुश्ती मत [illegible] (जब पारसियों के पुरखा भारत से आये थे) वेदों के [illegible] उसके उत्तर काल में भी उस पर वैदिक [illegible] यही कारण है कि वह पारसियों के पिछले धर्म-ग्रन्थों [illegible] वर्णित रूप में भी वैदिक धर्म से बहुत सादृश्य रखता है

वैदिक और ज़रतुश्ती मत की [illegible] ग्रन्थकार की सम्मति उद्धृत करके [illegible]

"पवित्र वैदिक धर्म और ज़रतुश्ती मत [illegible] मत उन दूषणों और मिथ्या क्रियाओं [illegible] प्रादुर्भूत हुआ, जिन्होंने विशुद्ध वैदिक [illegible] तथा पुरोहित और प्रजा पालक राजाओं के [illegible] प्रशस्त धर्म का स्थान ग्रहण कर लिया था। [illegible] में वही काम किया था जो महात्मा बुद्ध ने [illegible]

इस पर टीका टिप्पणी [illegible] कार करता है कि ज़रतुश्त बुद्ध के [illegible] उद्देश्य वैदिक धर्म से पीछे के मिथ्या [illegible] एक दूसरे पारसी ग्रन्थकार [illegible]

---

१ Zoroastrianism [illegible] p. 63 by Khurshedji [illegible]

ऐसे ही विचार प्रकट करते हैं कि जरदुश्ती मिशन का उद्देश्य एक ईश्वर का उपदेश करने वाले आर्यों के प्राचीन धर्म को संशोधन करना था (उसको वे स्पष्ट शब्दों में वैदिक धर्म के नाम से नहीं पुकारते) वे लिखते हैं--"जो वस्तु आरम्भ में ईश्वर की महिमा का प्रकाश रूप समझी जाती थी, काल की गति से उनको पुरुषवत् मान लिया गया। भक्तों की निर्बल कल्पना ने उन्हें देवता का रूप दे दिया और अन्त में सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर के स्थान में उनकी पूजा होने लगी। इस प्रकार वह प्रथम उच्च कक्षा का तात्विक धर्म अनेक ईश्वरवाद के चक्र में पड़कर अवनत हो गया। मूर्त्तिपूजा और मन घड़न्त देव और राक्षस आदि की पूजा करना उसका उद्देश्य बन गया। यही बड़े दूषण थे जिनको दूर करने के लिये हमारे आचार्य्य जरदुश्त ने कष्ट उठाया। उस समय के पुराने मत को अहुर पूजा की प्रारम्भिक पवित्रता की ओर ले जाना उनका मुख्य उद्देश्य था।"❀

यह सम्भव है कि ज़रदुश्त के प्रादुर्भाव के समय एक ईश्वर की उपासना का उपदेश करने वाला विशुद्ध वैदिकधर्म अवनत होकर बहुत से देवी देवताओं को मानने लगा था और इन्द्र को सब देवों का राजा समझता था। ज़रदुश्त के उपदेश का उद्देश्य इस देवी देवताओं की पूजा से विरोध करना था। यह स्वाभाविक बात है कि उस समय प्रचलित मत के अनुयायिओं और सुधार के समर्थकों मे कुछ वैमनस्य हुआ हो, इससे यह बात समझ मे आ जाती है कि जिन देवताओं को आर्य कहाने वाले लोग पूजते थे, उन्हे जन्दावस्ता मे बुरी † आत्मा क्यों कहा गया, और इन्द्र उनका राजा क्यों माना गया, और संस्कृत भाषा में परिवर्त्तन क्यों

❀ *The Teachings of Zoroastrianism and the Philosophy of Parsi Religion pp. 16—17.*

† फारसी भाषा में देव शब्द के अर्थ अब भी राक्षस या बुरी आत्मा के हैं। इन्द्र सभा नाटक आदि में लाल देव और काले देव से बहुत पाठक परिचित होंगे।

हुआ कि जरदुश्तियों के ईश्वर का मुख्य नाम अहुर ([illegible]) [illegible] अर्थों में व्यवहृत होने लगा ।

यहनामयष्ट के नीचे लिखे वचन से पाया जाता है कि [illegible] पशुवध की भी निन्दा की है, जिस को उस समय के वैदिक आर्य [illegible] में करने लगे थे:—"अहुर के बनाये हुए वृक्ष के [illegible] की आत्मा को मनुष्य से उचित यश नहीं मिलता [illegible] (यज्ञों में) पानी के समान लहू बहाते हैं ।" ‡ इस में [illegible] वैदिक आर्यों की ओर संकेत है जिनको [illegible] पूजक कहता था और अपने अनुयायियों को [illegible] मजदा का उपासक कहता था । इस से अनुमान [illegible] वैदिक आर्यों में यज्ञ में पशु वध करने की प्रथा [illegible] बुद्ध के समय में भी प्रचलित थी उन्होंने भी "पानी के समान [illegible]" की घोर निन्दा की है । यह बात निर्विवाद है कि [illegible] वध कभी नहीं करते थे ।

प्राचीन और अर्वाचीन समय के इतिहास में [illegible] उदाहरण मिलते हैं कि जब कभी पुरोहित [illegible] प्रबलता और सर्व साधारण की [illegible] अन्य कारणों से धर्म का ह्रास होता है [illegible] का प्रादुर्भाव होता है जो [illegible] इस उत्साह से प्रेरित होकर समाज [illegible] जो कार्य [illegible] को प्राचीन [illegible]

---

* अहुर के समान [illegible] यहां [illegible] से तात्पर्य है ।

† ईसा पूर्व [illegible] रावण है ।

‡ [illegible]

करना पड़ा वही कार्य राजा राममोहनराय और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हमारे समय में किया। इन सभी महानुभावों ने अपने २ विचारों के अनुसार पवित्र वैदिक धर्म के संशोधन का कार्य किया और इसे अवनति के गर्त्त से निकाला जिसमे वह स्वार्थ व अज्ञानान्धकार के कारण पड़ गया था। फिर कुछ ऐसे कारण उपस्थित हो गये (जिनके विस्तार की यहां आवश्यकता नहीं) कि बौद्ध धर्म के समान जरदुश्ती मत ने भी एक नवीन मत का रूप धारण कर लिया, परन्तु हम समझते हैं कि यह बात अच्छी तरह सिद्ध की जा चुकी है कि जिन मुख्य सत्य सिद्धान्तों की जरदुश्त ने शिक्षा दी, वे महात्मा बुद्ध के उपदेशों के समान वेदों पर अवलम्बित तथा उन्हीं से निकले हैं।

उपसंहार।

हम देखते हैं कि मुसलमानी और ईसाई मत के सिद्धान्त यहूदी मत से लिये गये हैं। ईसाई मत के कुछ उपदेश बौद्ध धर्म से भी लिये गये हैं। यहूदी मत के सिद्धान्त ज़रदुश्ती मत से निकले सिद्ध हो सकते हैं। ज़रदुश्ती और बौद्ध धर्म दोनों का पता सीधा वैदिक धर्म तक चलता है। क्या इसी प्रकार वैदिक धर्म का भी उद्गम किसी दूसरे मत से दिखाया जा सकता है? कदापि नहीं, क्योंकि इतिहास मे उससे पुराना और कोई मत नहीं पाया जाता। प्रोफ़ेसर मोक्षमूलर जिन्होंने जीवन भर वेदों का अध्ययन किया तथा जिन के समान तुलनात्मक धर्म-विज्ञान का ज्ञाता कदाचित् ही कोई विद्वान् हुआ हो, लिखते हैं:—

"केवल वैदिक धर्म ही ऐसा धर्म है जिसकी उन्नति विना किसी बाहर के प्रभाव के हुई है।... ..इबरानियों अर्थात् यहूदियों के मत मे भी बेबेलियन फ़िनेशियन और कुछ पीछे फ़ारस निवासियों के प्रभाव का पता चला है।"✻

✻ *India uhat can it teach us? Paye 129.*

वैदिक धर्म की उत्पत्ति केवल दो प्रकार से [illegible] (१) या तो यह मान लिया जावे कि वैदिक ऋषियों पर ईश्वरीय [illegible] प्रकाश हुआ। (२) या यह समझना चाहिये कि [illegible] सहायता के केवल अपनी बुद्धि बल से वैदिक धर्म को [illegible]।

वेदों को ईश्वरीय ज्ञान न मानने वाले [illegible] स्वीकार करते हैं कि ईश्वर सम्बन्धी विचार तो [illegible] मनुष्य के मस्तिष्क में स्वयं नहीं उत्पन्न हो सकता। [illegible] G. Flint अपने 'Theism' नामक [illegible]

"जो लोग आस्तिक हैं परन्तु ईश्वरीय [illegible] मानते उनका ईश्वर वही है, जिसका [illegible] उपदेश किया। इन प्राचीन यहूदी [illegible] प्रणाली द्वारा परमेश्वर का ज्ञान [illegible] पैतृक सम्पत्तिवत् प्राप्त किया है। यदि [illegible] यदि हम उस समाज में [illegible] कोई संदेह नहीं कि हमें [illegible]

कुरान में लिखा है कि [illegible] सकता है, परन्तु [illegible] है।" इस सिद्धान्त [illegible] बात ठीक नहीं है। [illegible] निपट अज्ञान में [illegible] दिया जाए तो [illegible] अज्ञानी बना [illegible]

जिन पाठकों ने [illegible]

[illegible] Flint's [illegible]

[illegible]

बहुत से सम्भवतया हम से इस बात में सहमत होंगे कि परमेश्वर का विचार, जिसकी बाइबिल में शिक्षा दी गई है ज़न्दावस्ता द्वारा वेदों से लिया गया है और अब्राहम् मूसा व याकूब के पैदा होने से बहुत पहले वैदिक ऋषिगण अनादि एवम् सर्वव्यापक की उपासना करते तथा वैसा ही करने के लिये सबको उपदेश देते थे। अतएव हम डाक्टर फ़्लिण्ट के वाक्यों को कुछ आवश्यक परिवर्त्तन के पश्चात् दुहराने तथा यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं करते कि—"हम में से सब लोगों का परमेश्वर, जो उसे मानते हैं अर्थात् उनका भी जो वेदों को नहीं मानते और उनका भी जो किसी ईश्वरीय ज्ञान को नहीं मानते, वही है जिसका अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ने उपदेश लिया है। परम्परागत ऐतिहासिक प्रणाली द्वारा बिना किसी रुकावट के इन आदि वैदिक ऋषियों का ज्ञान हम तक पहुंचा। हमने उसको उनसे पैतृक सम्पत्तिवत् प्राप्त किया है। यदि यह हम तक न पहुंचता, यदि हम ऐसे समाज में न हुए होते, जिसमें वह फैला हुआ था, तो निस्सन्देह हम स्वयम् उसे कभी प्राप्त नहीं कर सकते थे।"

आधुनिक समय के विचारशीलों की ऐसी धारणा है कि अन्य समस्त संस्था और विचारों के समान ईश्वर ज्ञान की उत्पत्ति भी विकास वाद की सहायता से की जावे अर्थात यह कि प्रारम्भ में कुछ अनगढ़ विचार थे और पीछे क्रमशः और लगातार उन्नति होती आई। डाक्टर फ़्लिण्ट केवल यहूदी ईसाई और मुसलमानी मत को आस्तिक मानते हैं। इन तीन मतों का उल्लेख करते हुए मुसलमानी मत के सम्बन्ध में वे लिखते हैं.—

"यद्यपि मुसलमानी मत सब से पीछे प्रकट हुआ तथापि वह सब से कम उन्नत और सबसे कम परिपक्व है। ईश्वर के विचार को जिसे उसने दूसरों से लिया था उन्नत और अभ्युदित बनाने के बदले उलटा दूषित

और अस्तव्यस्त कर डाला ...।"

मि० ग्रान्ट एलिन Mr. Grant Allen [illegible] पक्षपाती होने पर भी ईसाई मत के सम्बन्ध में ऐसी ही [illegible] करते हैं कि—ईसाइयों ने ईश्वर सम्बन्धी विचार [illegible] उसे बिगाड़ डाला। वे कहते हैं—"ईसाइयों ने [illegible] यहूदियों से लिया और उनके शब्दों में [illegible] पुत्र और पवित्र आत्मा का मिलाकर [illegible] ने बिगाड़ दिया, क्योंकि [illegible] यहूदियों [illegible] हो गई।"

पाँचवें अध्याय के [illegible] दिखा चुके हैं कि [illegible] में बाइबिल के आने से [illegible] नहीं [illegible]

प्रो० मोक्षमूलर अपने [illegible] में धर्म के इतिहास की [illegible] है—"मेरा विश्वास है कि जितना [illegible] हम हर एक धर्म के [illegible] अधिक शुद्ध ईश्वर सम्बन्धी विचार [illegible] का उतना ही अधिक शुद्ध ईश्वर [illegible] धर्म के संस्थापक [illegible] विचारवान के सामने [illegible] पक्षपाती [illegible] करेंगे तो उनके सिद्धान्तों में [illegible]

[illegible]

जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है हमें दो बातों में से एक स्वीकार करनी पड़ेगी अर्थात् या तो यह मान लिया जावे कि वैदिक ऋषियों पर ईश्वर के ज्ञान का प्रकाश हुआ, अथवा इस पर विश्वास किया जावे कि उन्होंने विना किसी सहायता के ऐसा धर्म और फ़िलासफ़ी घढ़ ली जो विशुद्ध और पूर्ण है, साधारण और महान् है; सत्य और युक्ति युक्त है, जिससे दूसरे धर्मों के प्रवर्त्तक तथा आचार्यों ने अपने धार्मिक विचारों

द्वारा हमें ईश्वरीय गुणों को उत्तरोत्तर अधिक समझने की योग्यता प्राप्त होती जाती है। यहां हम डाक्टर फ्लिण्ट के (Theism) से कुछ शब्द उद्धृत करते हैं :—

"सहस्रों वर्ष पूर्व ऐसे मनुष्य थे जो बहुत ही साधारण शब्दों में कहते थे कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है। ईश्वर पर विश्वास रखने वाला मनुष्य इस बात को अवश्य स्वीकार करेगा कि आधुनिक ज्योतिष सम्बन्धी अन्वेषणायें उससे अधिक ईश्वर विषयक ज्ञान उत्पन्न कराती हैं, जितना कि किसी प्राचीन विद्वान् वा इबरानी लोगों को हो सकता था। बहुत समय हुआ जब मनुष्य ने परमेश्वर की बुद्धिमत्ता पर विश्वास किया था। यह बात प्रत्येक समझदार आस्तिक को माननी पड़ेगी कि विज्ञान के अनेक आविष्कारों से मनुष्य के विचार ईश्वर के ज्ञान की महिमा के विषय में बहुत ठीक और विस्तृत हो जाते हैं, जिससे यह जानने में सहायता मिलती है कि हमारी पृथ्वी का अन्य लोकों के साथ क्या सम्बन्ध है? यह अपनी वर्त्तमान दशा में कैसे आई? उस पर विविध प्रकार के पौधे और जीव किस प्रकार पैदा किये गये? उनके द्वारा वह किस प्रकार सुसज्जित और उन्नत हुई? ये किस प्रकार विकसित और विभाजित हुये? उनकी आवश्यकतायें किस प्रकार पूर्ण की गईं?" (पृ० ५४-५५) डाक्टर फ्लिण्ट स्वीकार करते हैं कि—"मेरा यह विश्वास नहीं कि हम ईश्वर के सम्बन्ध में कोई नवीन सत्य खोज सकेंगे।" विकासवाद पहिले बीज वा अंकुर का होना मानता है, वही ज्ञान के अंकुर या बीज हम वेदों में पाते हैं।

को लिया, जिसके द्वारा किसी न किसी रूप में मनुष्य [illegible] प्रकाश और शांति का प्रचार हुआ, जिसने अन्धकार में [illegible] दिखाया, भय में शक्ति प्रदान की और दुःख में सान्त्वना दी। [illegible] न भूलना चाहिये कि ये ऋषि लोग, जैसा कि सब ही [illegible] प्राचीन और प्रारम्भिक समय में हुये थे, यद्यपि [illegible] ल्यावस्था में थी। यह बात हम पाठकों ही पर [illegible] दोनों बातों में से जो अधिक युक्तिसंगत हो [illegible] रुचि चाहे जिधर हो परन्तु हम आशा करते हैं कि [illegible] का मूल स्रोत सिद्ध करने के लिये पर्याप्त [illegible] समझ में ऊपर की दूसरी बात को मानना [illegible] के विरुद्ध है।

§ इस सम्बन्ध में एक ईसाई पादरी, [illegible] [illegible]illips of London M[illegible], Madras [illegible] में कुछ उद्धरण देना अनुचित न होगा [illegible] पर सन १८९३ में [illegible] Parliament of Religions में [illegible]

"हम देख चुके हैं कि [illegible] सब से ऊँचा विचार और [illegible] पाया जाता है" [illegible]

"यह स्पष्ट है कि [illegible] वैदिक [illegible] अपनी खोज [illegible] हमको मिलता है [illegible] की ओर [illegible] पाया जाता है। इसलिये [illegible] से ईश्वरीय [illegible] दिया क्योंकि [illegible]

मे मिलनी चाहिये थी, इसलिये हमको ऐसा उत्तर ढूंढ़ना चाहिए जिससे (आरम्भ में) वरुण जैसे ईश्वर के शुद्ध ज्ञान का और उस लगातार अवनति का भी समाधान हो जावे जिसका अन्त ब्रह्मा मे पाया जाता है और यह समाधान किस उत्तर से ऐसे अच्छे प्रकार हो सकता है जैसा इस सिद्धांत से कि आरम्भ मे ईश्वर द्वारा ज्ञान प्राप्त हुआ ?" *

एच० पी० ब्लैवस्टकी के शब्दों को यहाँ हम फिर दुहरा सकते हैं कि "आर्य सैमी, या तुरानियों मे ऐसा कोई धर्म प्रवर्त्तक नहीं हुआ, जिसने किसी नये धर्म का प्रचार या नवीन सत्य का प्रकाश किया हो। ये समस्त प्रचार करने वाले हुए हैं, मालिक आचार्य नहीं।" फिर धर्म का असली आचार्य कौन है ? 'एक ईश्वर' उसके अतिरिक्त और कौन हो सकता है ? ऐसा ही पतञ्जलि मुनि कहते हैं:—

"स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।"

"वह प्राचीन से प्राचीन ऋषियों का आचार्य है क्योंकि वह कालबन्धन से मुक्त है।" (योग सूत्र १ । १ । २६)

जिन मुख्य-मुख्य धाराओं में होकर धर्म-नद निरन्तर बहकर आया है उनके किनारे-किनारे होकर हम धर्म के स्रोत की ओर चले हैं। कुरान और बाइबिल हमे जन्दावस्ता तक ले जाते हैं और जन्दावस्ता वेदों तक। वेदों से आगे हम नहीं बढ़ सकते। यहाँ आकर हमे ज्ञान होता है कि धर्म की धारा सदैव रहने वाले हिम मे लोप जाती है, जो स्वर्गीय आकाश से उसके ऊपर गिरती है। तो क्या अब हमारा यह कथन ठीक नहीं है कि—'वेद ही धर्मों का आदि स्रोत है' ?

* The Teaching of the Vedas dy Maurice Phillips (Longman Green & co.) p. 104.

* ओ३म् इति शम् * 8५3

मुद्रक—मि० जे० एस० पाल, वसन्त प्रिंटिंग प्रेस, गनपत रोड, लाहौर।
प्र०—बा० विश्वनाथ एम० ए०, महाशय राजपाल एण्ड सन्ज़ लाहौर।

श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए० की नई रचना

मैं और मेरा भगवान्

[द्वितीय संशोधित १९४४ संस्करण]

श्री गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय आर्यसमाज के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने 'आस्तिकवाद' आदि कई ग्रंथ लिखकर अपने लिये एक विशेष स्थान बना लिया है। 'मैं और मेरा भगवान' उपाध्याय जी की नई पुस्तक है। इस पुस्तक का मुख्य विषय यही है कि जीव और ब्रह्म का जो आपस का सम्बन्ध है उसे वेदों, दर्शनों और उपनिषदों के आधार पर स्पष्ट किया जाए। इस तरह जहां वैदिक सिद्धान्त के दृष्टिकोण से इस रहस्य को समझाने की कोशिश की गई है, वहीं साथ-साथ संक्षेप में इस विषय में नवीन वेदान्तियों और योरप के फिलासफरों के जो विचार हैं, उनको भी परीक्षा की कसौटी पर परख कर उनकी असारता दिखाई है।

'मैं और मेरा भगवान' अपने प्रकार की एक अनोखी पुस्तक है जिसमें आत्मा और परमात्मा के रहस्य को इतने सुबोध, सरल व हृदय-ग्राही ढंग से पेश किया है कि सर्वसाधारण भी पढ़ कर अपनी जिज्ञासा शान्त कर सकें।

स्वाध्याय के लिए यह ग्रंथ इतना उपयोगी है कि इसे पंजाब प्रान्तीय आर्य कुमार परिषद ने तथा कई गुरुकुलों ने पाठ्य-पुस्तक के रूप में नियत किया है।

सुन्दर, सजिल्द पुस्तक का मूल्य एक रुपया चार आना।

संशोधित, परिवर्धित संस्करण छप गया

स्वाध्याय सुमन

लेखक—श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ

(आचार्य, दयानन्द उपदेशक विद्यालय, लाहौर)

इसमे चारों वेदों मे से कुछ सुन्दर और भावमय मंत्र चुन कर इतनी रोचक व्याख्या की है कि पढ़ते जाइये और भक्ति के आवेश में गद्‌गद् हो जाइये। भाषा बड़ी सरल और ललित; व्याख्या बडी सुगम और हृदयग्राही है। पुस्तक आदि से अन्त तक प्रभुभक्ति के रंग मे रंगी है। 'स्वाध्याय-सुमन' में वेदों के केवल उन्हीं मंत्रों को स्थान दिया गया है जो भक्ति और उपासना से सम्बन्धित हैं, जो मनुष्यमात्र की उन्नति के लिये विशेष उपयोगी हैं।

'स्वाध्याय-सुमन' लिखने मे श्री स्वामी वेदानन्द जी का एक और भी मुख्य उद्देश्य है और वह यह कि यह पुस्तक आर्यसमाजों एवं स्त्री-समाजों में कथा और उपदेश करने के लिये भी काम मे आए। अनेक स्थान ऐसे हैं जहां वर्षों कोई उपदेशक या प्रचारक नहीं पहुँचता। ऐसे स्थानों की इस कमी को यह पुस्तक पर्याप्त मात्रा मे पूरा करेगी क्योंकि इसकी सहायता से थोड़ा पढ़ा हुआ सज्जन भी उपदेश कथादि कर सकता है। उपदेशकों और व्याख्याताओं के लिये भी यह पुस्तक बहुत उपयोगी है।

श्री महात्मा नारायण स्वामीजी की 'स्वाध्याय-सुमन' पर सम्मति

...स्वामी वेदानन्द जी ने 'स्वाध्याय सुमन' लिख कर आर्य जनता पर बड़ा उपकार किया है। इसकी एक-एक प्रति हर सद्‌गृहस्थ और आर्यसमाज में रहनी चाहिये...

बढ़िया चिकना कागज़-सुन्दर छपाई—पक्की जिल्द सहित मूल्य दो रुपया।